







आधुनिक  
हिन्दी-मराठी में काव्य-शास्त्रीय अध्ययन  
( विशेषतः सन् १९०० से १९६० तक )

(दिल्ली विश्वविद्यालय की पी एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबंध)

लेखक  
डॉ० मनोहर काळे  
प्राध्यापक, रामजस कॉलेज, दिल्ली

हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्रा० लि०

गिरगांव,

बम्बई—४

---

नाला दिल्ली

१९६३ प्रथम संस्करण

•

मूल्य इक्कीस रुपये

•

प्रकाशक यशोधर मोदी

मनजिग डाइरेक्टर

हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्राइवट लिमिटेड बम्बई-४

•

मुद्रक

श्री० पी० टाकूर व्यवसायक

सीडर प्रेस इलाहाबाद

•

आवरण

कमल

•

११४

# विषय सूची

हमारी योजना  
प्रस्तावना प्रावचन

१ १५

प्रथम अध्याय

विषय प्रवेश

(ब) साहित्यशास्त्र काव्यशास्त्र  
परिभाषा विषय सीमा १८  
(सैद्धांतिक अध्ययन)

रस सिद्धान्त का तुलनात्मक अध्ययन

१ भाव स्वरूप प्रकरण

भाव का स्वरूप

संस्कृत में

११

हिंदी में

१३

मराठी में

१९

निष्पत्ति

२५

स्थायी भाव का स्वरूप

संस्कृत में

२६

स्थायीभाव और स्थिरवृत्ति ( सेंटिमेंट )

हिंदी में

२८

मराठी में

३५

विवेचन

स्थायीभाव और स्थिरवृत्ति का स्वरूप

३९

सारान्त

४६

स्थायीभाव और सेंटिमेंट में अंतर

४७

रस और सेंटिमेंट में निम्नता

४८

धनुभाव-वर्गीकरण	६५
सचारी भाव का स्वरूप	६७
नवीन सचारी भावों की उद्भावना	७५
सचारी भावों का वर्गीकरण	७७
तुलनात्मक निष्पन्न	८२
सांख्यिक भाव	८४
तुलनात्मक सारांश	८९
२ रस स्वरूप प्रकरण	
रस का स्वरूप (पूर्व पाठिका)	९१
वस्तुवाची रसस्वरूप सुख तुलनात्मक रस अध्ययनान्त आनन्दमय रसस्वरूप	९८
हिन्दी में रस-स्वरूप का अध्ययन	१०१
आनन्दमय रस-स्वरूप की परम्परा	१०७
भाष्यमय रसस्वरूप	१०५
मराठी में रसस्वरूप का अध्ययन आनन्दमय और सहृदयनिष्ठ रस-स्वरूप के विवरण	१०९
रस-स्वरूप का भाववादा-परम्परा	११३
रस का स्वरूप ज्ञात निरूपण है वस्तुनिष्ठ है	११७
तुलनात्मक सारांश	१२४
३ रस-संज्ञा प्रकरण	
पूर्व पाठिका	१२६
हिन्दी में रस-संज्ञा और रस-वर्गीकरण	१३०
नवान रस—विषाद रस, प्रकृति रस, सारांग	१३७
मराठी में रस-संज्ञा और रस वर्गीकरण	१४७
नवान रस—उत्तम रस या प्रकृति रस	१५९
विषाद रस	१६२
उद्भूत रस	१६३
प्रभोभ रस	१६६
परम्परागत रसों में पञ्चरस	१६७
वर्गीकरण के अनुसार रस	१७०
विशेष रस	१७३
तुलनात्मक विवरण	१७५

४	रसास्वाद प्रकरण	
	संस्कृत का रसास्वाद तथा काव्यान्वय का स्वरूप संस्कृत में	१८०
	रसास्वाद काव्यास्वाद काव्यान्वय प्रक्रिया और स्वरूप,	
	हिन्दी में	१८७
	मराठी में	२००
	तुलनात्मक सारांश	२१८
५	कण्ठ रसास्वाद प्रकरण	
	संस्कृत साहित्यशास्त्र में कण्ठ रसानुभूति का स्वरूप	२२२
	हिन्दी में	२२६
	मराठी में	२३८
	तुलनात्मक निष्पत्ति	२५७
६	भक्तिरस प्रकरण	
	संस्कृत काव्यशास्त्र में भक्ति रस की स्थिति	२६१
	हिन्दी में	२६३
	मराठी में	२६९
	तुलनात्मक निष्पत्ति	२८१
७	रस सिद्धान्त आधुनिक कसौटी पर	
	रस सिद्धान्त की सीमाएँ तथा यूनताएँ	२८२
	रस सिद्धान्त की शक्ति और व्याप्ति	२८७

### द्वितीय अध्याय

#### अलंकार सिद्धान्त का तुलनात्मक अध्ययन

	अलंकार सिद्धान्त की पूर्व पीठिका	२९५
	हिन्दी में अलंकार सिद्धान्त का अध्ययन	३१२
	परम्परानुयायी आख्याता पुनराख्याता विवेचक	३१३
	अलंकार परिभाषा	३१५
	अलंकारों का काव्य में स्थान और उनकी उपादेयता	३१८
	अलंकार-वर्गीकरण	३३१
	अलंकारों पर एक निबन्ध-अलंकार-वर्गीकरण	३३३
	अलंकार—मर्यादा शक्ति और विस्तार	३३८
	मराठी में अलंकार सिद्धान्त का अध्ययन	३४५
	परम्परानुयायी पुनराख्याता	३४५



जलकार परिभाषा	३४७
जलकारा का काव्य में स्थान और उनका उपादयता	३४८
जलकार वर्गीकरण	३६१
सकर-सप्तष्टि और उभयालकार	३६५
अलकार-सत्या-मकाच और विस्तार	३६६
तवीन अलकार	३७४
पाञ्चात्य अलकार	३७८
२०वें शताब्दी में अलकार विवचन	३८३
यूरोपीय अलकार सत्या और उनका वर्गीकरण	३९०
हिन्दी में पाञ्चात्य जलकारों का अध्ययन	३९३
मराठी में , ,	३९५
पाञ्चात्य अलकारों के हिन्दी मराठी के पारिभाषिक शब्द	३९६
तुलनात्मक निष्कर्ष	४०१

### तृतीय अध्याय

#### रीति-सिद्धान्त का तुलनात्मक अध्ययन

रीति सिद्धान्त की पूर पाठिका	४११
हिन्दी में रीति सिद्धान्त का अध्ययन	४२०
रीति की परिभाषा और उत्तरा गण्य	४२०
सिद्धा में	४२१
मराठी में	४२५
सारांग	४२७
गण-स्वरूप का अध्ययन	४२९
हिन्दी में	४३०
मराठी में	४३६
तुलनात्मक निष्कर्ष	४४३
हिन्दी में तुलनात्मक और गणों का उद्भासन	४४६
मराठी में	४४९
तुलनात्मक निष्कर्ष	४५९
हिन्दी में शाय विवचन	४६०
मराठी में शाय विवचन	४६५
तुलनात्मक निष्कर्ष	४७०

भारतीय रीति और पाश्चात्य 'स्टाइल' (गली)	४७१
पाश्चात्य 'स्टाइल' की विकास परंपरा	४७२
हिंदी में	४७४
मराठी में	४७८
तुलनात्मक विवेचन	४८५
सौख्य-शास्त्र और रीति-सिद्धान्त	४९०
रीति सिद्धान्त की शक्ति और व्याप्ति	४९९

## चतुर्थ अध्याय

## ध्वनि-सिद्धान्त का तुलनात्मक अध्ययन

१—ध्वनि सिद्धान्त की पूव पीठिका	५०५
२—हिंदी में ध्वनि सिद्धान्त का अध्ययन	५०८
३—मराठी में ध्वनि सिद्धान्त का अध्ययन	५२३
४—तुलनात्मक विवेचन और निष्पत्ति	५३४

## पंचम अध्याय

## वक्रोक्ति-सिद्धान्त का तुलनात्मक अध्ययन

१—वक्रोक्ति सिद्धान्त की पूव पीठिका	५४३
२—हिंदी में वक्रोक्ति सिद्धान्त का अध्ययन	५४७
३—मराठी में वक्रोक्ति सिद्धान्त का अध्ययन	५६३
४—तुलनात्मक विवेचन और निष्पत्ति	५७९

## षष्ठ अध्याय

## औचित्य-सिद्धान्त का तुलनात्मक अध्ययन

१—औचित्य सिद्धान्त की पूव पीठिका	५८९
२—हिंदी में औचित्य सिद्धान्त का अध्ययन	५९३
३—मराठी में औचित्य सिद्धान्त का अध्ययन	५९९
४—तुलनात्मक विवेचन और निष्पत्ति	६०३

## सप्तम अध्याय

## ऐतिहासिक सर्वेक्षण

१—हिन्दी साहित्य शास्त्र की विकास-परंपरा	६०९
मराठी साहित्य शास्त्र की विकास परंपरा	६४२
उपसंहार	६७७
अध्ययन-सामग्री	६८५



## हमारी योजना

'आधुनिक हिंदी-भराठी मे काव्य शास्त्रीय अध्ययन' हिंदी अनुसंधान परिषद् प्रथम माला का सत्ताईसवां प्रथम है। 'हिंदी अनुसंधान परिषद्' हिंदी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय की सत्या है, जिसकी स्थापना अक्टूबर सन १९५२ में हुई थी। परिषद् के मुख्यतः दो उद्देश्य हैं—हिंदी वाङ्मय विषयक गवेषणात्मक अनुशीलन तथा उसके फलस्वरूप प्राप्त साहित्य का प्रकाशन।

अब तब परिषद् की ओर से अनेक महत्वपूर्ण प्रयोगों का प्रकाशन हो चुका है। प्रकाशित प्रथम तीन प्रकार के हैं—एक तो वे जिनमें प्राचीन काव्यशास्त्रीय प्रथा का हिंदी रूपांतर विस्तृत आलोचनात्मक नूतनराजी के साथ प्रस्तुत किया गया है, दूसरे वे, जिन पर दिल्ली विश्वविद्यालय की ओर से पी.एच.डी. की उपाधि प्रदान की गई है और तीसरे वे प्रथम तीनका अनुसंधान के साथ—उसके सिद्धांत और व्यवहार दोनों पक्षों के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।

प्रथम यग के अन्तर्गत प्रकाशित प्रथम हैं—(१) हिंदी काव्यालंकार सूत्र, (२) हिंदी चण्डिका जीवित, (३) अरस्तू का काव्य शास्त्र, (४) हिंदी काव्यालंकार, (५) अग्नि पुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, (हिंदी अनुवाद) (६) पांचाल्य काव्य शास्त्र की परम्परा, (७) काव्य-ज्ञान (होरेस कृत), (८) सौंदर्य तत्त्व, (९) हिंदी अभिनवभारती तथा (१०) हिंदी नाट्य-रूपण। द्वितीय यग के प्रथम हैं—(१) मध्यकालीन हिंदी कव्यप्रिया, (२) हिंदी नाटक उद्भव और विकास, (३) सूफामन और साहित्य, (४) अष्टांग साहित्य (५) राधावल्लभ संप्रदाय सिद्धान्त और साहित्य, (६) मूर की काव्य-कला, (७) हिंदी में गमरगीत काव्य और उसकी परम्परा, (८) मवि-गणराज गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के आगमता, (९) हिंदी रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य, (१०) मतिराम कवि और जाचाय (११) आधुनिक हिंदी कवियों के काव्य सिद्धान्त, (१२) राज नाया के कृष्ण काव्य में माधुय भक्ति (१३) हिंदी में नीति काव्य का विकास। तीसरे यग के अन्तर्गत तीन प्रयोग

का प्रकाशन हो चुका है—(१) अनुसंधान का स्वरूप, (२) हिंदी के स्वीकृत गीय प्रबंध तथा (३) अनुसंधान की प्रक्रिया ।

प्रस्तुत ग्रंथ द्वितीय बग का चौदहवा प्रकाशन है, जिसे हम काव्य एव काव्य शास्त्र का ममता की सेवा में अर्पित कर रहे हैं । इस शीघ्र प्रबंध के माध्यम से हम हिन्दीतर भारतीय भाषाभा के अथय भाण्डार में प्रवेश कर रहे हैं ।

परिषद् की प्रकाशन-योजना को कार्यान्वित करने में हमें हिन्दी की अनेक प्रसिद्ध प्रकाशन-संस्थाओं का सक्रिय सहयोग प्राप्त होता रहा है । उन सभी के प्रति हम परिषद् की ओर से कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं ।

हिन्दी अनुसंधान परिषद्,  
दिल्ली विश्वविद्यालय,  
दिल्ली ।

२० अप्रैल, १९६३

नगेद्र  
( अध्यक्ष )

## प्रस्तावना

### शुभा ते पथान सतु

भराठी वाङ्मय के इतिहास से विदित होता है कि प्राचीन काल के अधिकांश साहित्य का स्वल्प काव्यमय या पद्यबद्ध-सा था। गद्य लेखन के लिए मयेष्ट उत्तेजन विगत शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही प्राप्त हुआ। तदुपरान्त कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध इत्यादि गद्य साहित्य की विधाओं का निर्माण हुआ और इस साहित्य की प्रचुर समृद्धि हुई। इसी के साथ इस प्रकार के साहित्य के विषय में विचार-धर्म आरंभ हुई। इसके लिए हमने उसी अंग्रेजी साहित्य से समीक्षा तत्वों और विचारों को ग्रहण किया, जिसमें हमारे गद्य साहित्य को उत्तेजन प्राप्त हो रहा था और उन्हीं से हम अपना निर्वाह करने लगे। परंतु आरंभ में काव्य विषयक चिंतन के क्षेत्र में तो हमारी दृष्टि संस्कृत साहित्य के विचारों पर केन्द्रित थी। भरे विचार में यह स्थिति उत्तर भारत की प्रायः सभी भाषाओं के लिए समस्त समान रही होगी।

इसका एक परिणाम यह हुआ कि हमने अपने आस पास की इतर देशी भाषाओं की गतिविधियों के प्रति दुर्लक्ष किया और हम अंग्रेजी तथा संस्कृत साहित्य के विचारों का ही एकान्ततः अवलंब लेने लगे। इन दोनों भाषाओं में निहित वाङ्मय समृद्धि और साहित्य सम्यग्धी विचार हमें पर्याप्त लगने लगे। अतः हमने इतर देशी भाषाओं अथवा यूरोपीय भाषाओं का विशेष परिचय प्राप्त नहीं किया। अंग्रेजी भाषा और साहित्य का हम पर भले ही पर्याप्त प्रभुत्व रहा हो, परंतु इस से एक बड़ी हानि यह हुई कि हम इतर भारतीय भाषाओं से दूर दूर रहने लगे। हमारा प्रतिदिन का पारस्परिक व्यवहार निजी भाषाओं की अपेक्षा अंग्रेजी के माध्यम से चलने लगा। परिणामतः अंग्रेजी के बिना अन्य भाषाओं की सीखने की आवश्यकता ही नहीं रही। साथ ही संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य देशी भाषाओं के साहित्य की तुलना में पर्याप्त समृद्ध था, अतः इनके अनिर्वक्त अन्य साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होने लगी।

कम से कम मराठी जनता के विषय में तो यही स्थिति रही है। अंग्रेजी भाषा और साहित्य में दोनों दंगी भाषाओं के बीच में दीवार बन कर खड़े हो गये। प्राचीन मराठी साहित्य में सत्ता न और कविता ने हिंदी में भी रचनाएँ की थीं। नामदेव की हिंदी और पंजाबी भाषाओं की रचनाएँ तो प्रसिद्ध ही हैं। परंतु वनमान समय में प्रायः ऐसी गिन्यति दिखाई नहीं देती। अंग्रेजी की सहायता से हम यूरोप के साहित्य सम्बन्धी विचारों की जानकारी अधिक रखते हैं परंतु अपनी भंगिनों तुल्य भाषाओं में निहित 'विचार धन' से हम अज्ञात हैं। भारतीय जनता में जो भावनात्मक एवम अपक्षित है उस दृष्टि से विचार करें तो यह परिस्थिति अनिष्ट और एदजनक है। दशो भाषाओं के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन और पारस्परिक परिचय अत्यंत इष्ट और आवश्यक है। इन भाषाओं में परस्पर आदान प्रदान को प्रोत्साहित करना चाहिए और एक दूसरे की सहायता की दृष्टि से इस काम में प्रवृत्त होना आवश्यक है।

डा० मनोहर काळ द्वारा प्रस्तुत हिंदी और मराठी साहित्य-गत विचारों का तुलनात्मक अध्ययन इसी कारण मुझे अत्यंत स्वागतार्ह प्रतीत होता है। जहाँ तक मराठी के सम्बन्ध में कहना है,—और मैं इस सम्बन्ध में ही कह सकता हूँ—इन्होंने एतद्विषयक प्रायः सभी साहित्य का परिष्कृत पूर्वक अध्ययन करके उनमें निहित सारभूत सिद्धान्तों को भली प्रकार से उपस्थित किया है और इनके आधार पर इन्होंने जो निष्कर्ष निकाले हैं वे उपयुक्त ही हैं। मराठी में साहित्य की इतर भाषाओं के विषय में जो अध्ययन हुआ है, उसे इस शोध प्रबंध में ग्रहण नहीं किया गया है, क्योंकि इनके प्रबंध का क्षेत्र काव्य विचारों तक ही सीमित है। इनका यह शोध प्रबंध हिंदी और मराठी साहित्य के समाप्ति के लिए अत्यंत उपयोगी और मूल्यवान् सिद्ध हुए बिना नहीं रहेगा। इनका प्रस्तुत प्रयत्न इन दोनों भाषाओं की इतर भाषाओं में भी इसी प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन के लिए स्फूर्तिदायक और मार्गदर्शक सिद्ध होगा, ऐसी मझ आता है।

रामनिधल बालना

पूना—४

१ फरवरी १९६३

रा० श्री० जोग

## प्रस्तावना

शुभा ते पयान सत्तु

मराठी वाङ्मयाच्या इतिहासात असे आढळने की प्राचीन कालात बहुतक वाङ्मय पाप्यस्वरूपाचे, निदान पद्यबद्ध असे होते, गद्य लेखनास गेल्या गत पाच्या पूर्वार्धानेच म्हणण्यासारखे उत्तेजन मिळाले, व त्यानंतरच्या कालात कथा, कादंबरी, नाटक, निबंध इत्यादि गद्य-वाङ्मयाचे प्रकार निर्माण होऊन त्या वाङ्मयाची भरभराट झाली, त्या-बरोबर या प्रकारच्या साहित्याविषयीहि विचार चर्चा घ्यावयास प्रारंभ झाला, या चर्चेला आधार म्हणून समीक्षेची तत्वे किंवा कल्पना याहि त्या वाङ्मयास चालना देणारया इंग्रजी वाङ्मयांतून घेऊन आपण त्यावर निर्वाह करू लागला, काव्य विचारामध्ये मात्र आरभोतरी संस्कृत साहित्य विचारच डोळ्यापुढे होता, बहुतेक सव उत्तर भारतीय भाषा मध्य ही अशीच स्थिति असावी असे मला वाटते,

याचा एक परिणाम असा झाला की आपल्या आजू याजूच्या इतर देगी भाषा मध्ये काय चाललं आहे याकडे दुलस करुन इंग्रजी व संस्कृत साहित्य-चर्चे वरच आपण अवलंबून राहू लागलो, या दोन भाषात असणारी वाङ्मय समृद्धि आणि साहित्य विचार आपल्यास पुरेसा वाटून इतर देगी भाषा शिवा पुरावीय भाषा याचा आपण थिगेय परिचय करुन घेतला नाही, इंग्रजी भाषेचे आणि वाङ्मयाचे आपल्यावर कितीहि श्रूण असले तरी, त्याचा एक मोठा अप कार असा झाला की इतर भारतीय भाषागी आपण पटकून राहू लागला, आपला वनदिन परस्पर व्यवहार आपापल्या भाषांच्या द्वारे चालण्याऐवजी तो इंग्रजी नून घातू लागला, म्हणून तिच्या सेरोज इतर भाषा गिक्ण्याची आवश्यकता उरली नाही, आणि संस्कृत व इंग्रजी वाङ्मय हें देगी भाषातील वाङ्मयाच्या मानारे फारच समृद्ध असल्याने त्यापराज इतर वाङ्मय घाचण्याची आवश्यकताहि घाटेगगी झाली, निदान मराठी जननच्या घाबर्तात तरा हें असे झाले, इंग्रजा भाषा आणि वाङ्मय ही दोही देगी भाषांच्या मध्ये भिनी प्रमाणे उभी राहिली, प्राचीन मराठीत अनेक सतांनी व कवींनी हिदी मध्यहि काही कांठी रचना केली,



होता, नामदवाचा हिंदी व पंजाबी भाषेंताल रचना प्रसिद्धच आहे, तसें अलीकडे बहूधा होत नाही इंग्रजांच्या अयोगामुळ युरोपमधील साहित्य विचार आपण अधिर जाणता, पण आपल्या भगिना भाषामधाल विचार घेऊ आपल्यास अज्ञात असतें, भारतीय जनतेंत जो भावनिक समवाय व्हावयास हवा आहे, त्याच्या दृष्टीने ही परिस्थिति अनिष्ट व खदकारक आहे, दशी भाषातील वाङ्मयाचा तौलनिक अभ्यास आणि परिचय होणें ही गाष्ट अत्यंत इष्ट व आवश्यक आहे त्या भाषामधील दबदब वाढावयास पाहिजे, व 'एकामेका साहच कर' या घसीत आपण या गोष्टीकडे पाहिलें पाहिजे,

इ० मनोहर काळे ह्मणानी हिंदी व मराठी वाङ्मयांतील साहित्य विचाराचा काल हा तौलनिक अभ्यास ह्मणारिता मला जपत स्वागताह चाटतो, मराठी-पुरतेंच सागावयाचें झायाम—आणि मी तवेंच मागू शकतो की त्यानी एतद्विषयक बहूतक सारें वाङ्मय अभ्यासपूर्वक वाचून त्यातील सारसिद्धात योग्य प्रकारें मांडिले आहेत, व त्यावरून त्यांना काढलेले निष्कर्षहि यथाय असेच आहेत, मराठी मध्य वाङ्मयाच्या इतर गालाविषयी झालेली चर्चा ज्यांत त्यांना या प्रबधात घेता आली नाही, कारण त्यानी आपल्या प्रबधाचें क्षेत्र काव्यविचारा-पुरतेंच मर्यादित करून घेतलें आहे, त्याचा प्रस्तुत प्रबंध हा हिंदी व मराठी साहित्याच्या समीक्षांस फार उपयुक्त आणि मोलाचा घाटल्यावाचून राहणार नाही त्याचा हा प्रयत्न या दोन वाङ्मयांच्या इतर गालामध्यहि असाच तौलनिक विचार होण्याच्या दृष्टीने स्फूर्तिदायक आणि भागदगक होईल अशी आशा मी करितो

म्युनिसिपल कालनी,

पुणें—४

१, फडुमारी, १९६३

रा० श्री० जोग

श्रद्धेय डा० नगेन्द्र को  
जिनकी प्रेरणा से मैं  
वाच्य शास्त्र के अध्ययन  
में प्रवृत्त हुआ



## प्राक्कथन

इसमें सन्देह नहीं कि भारत का प्राचीन काव्य शास्त्र विनोद समृद्ध है। अर्वाचीन काव्य शास्त्र के निर्माण में उसका योगदान असंदिग्ध है। परन्तु साहित्य की समृद्धि के साथ साथ उसके प्राचीन सिद्धांतों में भी परिवर्तन और परिवर्द्धन होना सहज स्वाभाविक है। अतः प्राचीन साहित्य सिद्धांतों को ही शाश्वत और सावनीम सिद्ध करना एकांत सत्य नहीं है। आधुनिक युग के साहित्य शास्त्र के निर्माण के लिए प्राचीन काव्य सिद्धांतों का कितना महत्व और योगदान है, उसका कितना अंग्राह्य और कितना त्याज्य है यह निर्धारित करना एक अत्यन्त जटिल किन्तु महत्वपूर्ण कार्य है। प्राचीन काव्य सिद्धांतों का भारतीय दार्शन, साहित्य, मानवशास्त्र आदि की व्यापक पृष्ठभूमि पर आरूपान्, पुनरागमन और पुनर्मुद्रण करने से ही प्रस्तुत कार्य सम्भव हो सकता है और आधुनिक समृद्ध साहित्यशास्त्र के निर्माण के लिए यह अत्यन्त आवश्यक भी है। इस दिशा में हिंदी तथा मराठी के आधुनिक साहित्य शास्त्रज्ञों ने अपनी अपनी भाषा में स्वतंत्र रूप से कार्य किया है। इस शोध प्रबंध में इनके विषयगत संस्कृत काव्य शास्त्र के सिद्धांतों पर अधिष्ठित अध्ययन का ही तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। इससे इस विशाल क्षेत्र के विद्वानों का विविध विचार-सरणिमा, मायताओं तथा नूतन उद्भावनाओं का परस्पर परिचय प्राप्त हो सके है।

भारतीय भाषाओं में काव्य शास्त्र के सिद्धान्तों की तांत्रिक चर्चा हिंदी और मराठी में जितनी व्यापक रूप में हुई है उतनी अन्य भारतीय भाषाओं में नहीं हुई। हिंदी मराठी के आधुनिक काव्य शास्त्र के निर्माण के लिए दोनों भाषाओं में इस विषय में स्वतंत्र रूप से पर्याप्त अध्ययन नितान्त अपेक्षित है। अब तक न हिंदी में इस दिशा में अध्ययन कार्य हो सका है और न मराठी में ही। प्रस्तुत शोध प्रबंध में न केवल हिंदी के काव्य शास्त्र के आधुनिक समीक्षकों के अध्ययन का व्यापक रूप में समाहार हुआ है बल्कि मराठी के भी समृद्ध काव्यशास्त्र के अध्ययन की व्यापक सम्भव रूप से उपस्थित किया गया है। इस शोध प्रबंध में इन दोनों भाषाओं के काव्य शास्त्र समीक्षकों की धार-

पात्रा, मन्तव्यता और अभिमतता का विवरण या सकलता मात्र नहीं है, अपितु इनके सद्भाितक अध्ययन पर तुलनात्मक दृष्टि से भी चिन्तन किया गया है और अतः मन्तव्य उपादय निष्पन्न निकाले गये हैं। सस्कृत-काव्य शास्त्र को व्यापक पठ भूमि पर इनके अध्ययन की परीक्षा करके इनके प्रतिपादन की अभिमतता, मौल्यता और उपादयता की समीक्षा की गई है।

आधुनिक हिन्दी काव्यशास्त्र व विद्वाना मे प० रामदहिन मिश्र की दृष्टि वतमान मराठी काव्य शास्त्र व अध्ययन की जोर उमुख हुई थी, किन्तु उका अध्ययन केवल सूचनापरक ही रहा है। मिश्र जा के अध्ययन मे एकांगिता होने के कारण अनेक प्रकार की ग्रातिया भी दृष्टिगत होती हैं, जिनका उल्लेख इस गोप प्रबन्ध मे यथा-स्थान कर दिया गया है।

मराठी और हिन्दी के आधुनिक काव्य-समीक्षकों ने अपने मन्तव्यो की स्थापना म अग्र-काव्य शास्त्र से जो विचार ग्रहण किये हैं, उन पर भी हमने तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने का प्रयास किया है। इस प्रसंग मे इतना उल्लेख करना आवश्यक है कि मूलतः दोनों भाषाया के समीक्षक सस्कृत के काव्य शास्त्र को ही उपजीव्य मान कर चले हैं।

यह गोप प्रबन्ध सात अध्याया म विभक्त है। अंतिम अध्याय मे हिन्दी मराठी की लगभग एक हजार वष की साहित्य-शास्त्र की विकास-परम्परा का इतिहासिक दिग्दान प्रस्तुत किया गया है। इसमे केवल ग्रन्थो की विषय-सूची अथवा प्रयकारा की नामावली मात्र प्रस्तुत करना उद्देश्य नहीं रहा है, वरन् प्रमुख साहित्यशास्त्रज्ञों के विगिष्ट दृष्टिकोण तथा उनके विवेच्य विषय के साराण को भी निरूपित किया गया है। इसमे हिन्दी-मराठी के प्राचीन तथा मध्ययुगीन साहित्यशास्त्रज्ञों तथा उनकी कृतिया का विस्तृत निरूपण नहीं किया गया है। गोप प्रबन्ध के लिए स्वीकृत विषय के अनुरूप आधुनिक साहित्यशास्त्रज्ञों की रचनाया का ही विस्तार से विवरण प्रस्तुत किया गया है। समग्र रूप से इस अध्याय म हिन्दी-मराठी व साहित्यशास्त्र के सद्भाितक अध्ययन का अभीष्ट आधारपत्क तयार हुआ है।

गप छ अध्याय सद्भाितक अध्ययन से सम्बद्ध है। प्रत्येक अध्याय के प्रारंभ म आद्य-यन्तानुरूप सस्कृत-साहित्य-शास्त्र की सद्भाितक पठभूमि संक्षेप में प्रस्तुत की गई है। हिन्दी-मराठी व काव्य शास्त्रज्ञा का सद्भाितक चिन्तन मूलतः सस्कृत व साहित्य विद्वाना पर ही अधिष्ठित है। अतः इस पठभूमि की अनिवार्यता असंदिग्ध है।

इस विद्वाना व तुलनात्मक अध्ययन व अंतगत प्रथम 'भाष्य प्रकरण' है।

इसमें भाव, स्थायी भाव, विभाज, अनुभाव तथा सचारी भावों का अध्ययन अभिन्न रूप में प्रस्तुत किया गया है। इन भावों के स्वरूप, लक्षण, वर्गीकरण तथा नये-नये प्रकारों की सीमासा सस्कृत-साहित्य-शास्त्र तथा पाश्चात्य मानस शास्त्र के आधार पर विस्तार से की गई है। अनेक नवीन स्थायी भावों तथा नवीन सचारी भावों की सम्भावना पर प्रकाश डाला गया है। 'रस-स्वरूप' के विषय में 'वस्तुवादी', 'भाववादी' तथा 'आनन्दवादी' दृष्टिकोणों का एकत्र निरूपण प्रथमतः इसी शोध प्रबंध में हो रहा है। एक ओर हिंदी-मराठी के काव्य शास्त्रज्ञों द्वारा नवीनभावित 'प्रकृतिरस', 'विषादरस', 'उदात्तरस', 'उद्वेग-रस', 'प्रसन्नोभरस', 'क्रांतिरस', 'देग भक्तिरस' आदि की विस्तृत समीक्षा की गई है तो दूसरी ओर परम्परागत नौ रसों में से बीभत्स, रौद्र आदि रसों की अनुपयोगिता या निस्तारता के विषय में प्रस्तुत इनकी धारणाओं का भी तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

रस-स्वरूप की विभिन्नता की दृष्टि में रस वर रसास्वाद या काव्यास्वाद का तथा कृष्ण रसानुभूति के स्वरूप का पृथक्-पृथक् प्रकरणों में विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। चार-पाच शताब्दियों तक हिंदी तथा मराठी भाषा में समान रूप से भक्ति रसात्मक काव्य-साहित्य का प्रचुर निर्माण हुआ है, अनभक्ति रस पर एक पृथक् प्रकरण में सद्धार्मिक अध्ययन किया गया है और भक्ति रस की स्वतंत्र प्रतिष्ठापना के गुण-दोषों की विस्तृत समीक्षा की गई है।

इस अध्याय के अंत में रस सिद्धांत की सीमाओं तथा यूनताओं का प्रथम व्यापक निरूपण किया गया है, तत्पश्चात् इसकी शक्ति और व्याप्ति का भी साधारण विवेचन किया गया है जिससे इस सिद्धान्त की काव्य-मूल्यांकन की क्षमता का प्रतीति हो सके।

अलंकार सिद्धांत के तुलनात्मक अध्ययन में सस्कृत साहित्य-शास्त्रगत अलंकार विकास की पृष्ठभूमि का निरूपण करने के उपरान्त हिंदी-मराठी के काव्यशास्त्रज्ञों की मायनाओं के अनुरूप अलंकार-परिभाषा, अलंकार-स्वरूप, अलंकारों की काव्यगत उपादेयता, अलंकार-वर्गीकरण, अलंकार-संख्या व संकोच और विस्तार का व्यापक तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। इन विभिन्न अलंकार विषयों के सम्बन्ध में सस्कृत-परम्परा भिन्न अनेक अभिन्न मायनाओं और विचारों का इस अध्याय में निरूपण हुआ है। विशेषतः अलंकार-स्वरूप, अलंकार-वर्गीकरण, अलंकार-संख्या-संकोच आदि विस्तार के विषय में पाश्चात्य के अलंकार विषयक अध्ययन का भी हिंदी-मराठी के समीक्षकों ने उपयोग किया है, परन्तु इसी अध्याय में पाश्चात्य अलंकार विकास की स्वरूपता भी मूल्य

में प्रस्तुत का गई है। जाधुनिक काव्य साहित्य के अनुरूप आविष्कृत अनेक नवीन अल्फ़ारा का भी निरूपण इस अध्याय में किया गया है।

यद्यपि आधुनिक काव्य शास्त्रज्ञों की नीति-गुण विधयक मायताएँ एकांत परम्परा भुक्त नहीं हैं इनके चिंतन में अभिनवता भी है, तथापि इनकी धारणाओं का सस्कृत क रीति सिद्धान्त तथा पाश्चात्य शैली ( स्टाइल ) तत्व के आधार पर परामर्श करने हुए तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। भारतीय रीति सिद्धान्त में कवि-व्यक्तित्व का महत्व-मापन पूर्ण रूप से नहीं हो सका है। पाश्चात्य शैली ( स्टाइल ) तत्व में कवि व्यक्तित्व की जसी महत्व प्रतिष्ठा है, वसा भारतीय रीति सिद्धान्त में भी गुण तत्व के पुनराख्यान से पूर्णतः सम्भव है इस तथ्य का विस्तार से प्रतिपादन किया गया है। हिंदी-मराठी के समासों द्वारा प्रस्तुत भारतीय रीति और पाश्चात्य शैली ( स्टाइल ) तत्व के पारस्परिक साम्य वचन्य का विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। वामन क रीति सिद्धान्तगत कतिपय तत्वों का पाश्चात्य सौंदर्याशास्त्राय तत्वों से सा य-वचन्यमूलक अध्ययन भी इसी अध्याय के अंतगत जा गया है। अतः भारतीय सिद्धान्त की सीमा गति का निरूपण करते हुए इस सिद्धान्त की काव्य मूल्यव्यवस्था उपाधेयता का समीक्षण किया गया है।

ध्वनि सिद्धान्त का मूलभूत आधार है—शब्द शक्ति। सस्कृत के आचार्यों ने अभिधा, लक्षणा व्यजना जादि शब्द शक्ति में व्यजना या ध्वनि को एकांत महत्व प्रदान किया है और उसी में काव्यत्व की स्थिति निर्धारित की है। यद्यपि हिंदी-मराठी क समीक्षकों ने शब्द शक्ति का वज्ञानिक अध्ययन का बहुत कम प्रयत्न किया है तथापि ध्वनिवाद की प्रतिक्रिया जाधुनिक समीक्षकों में दो रूपों में हुई है। कतिपय समीक्षकों में ध्वनय की अपेक्षा मूलतः वाच्य में काव्यत्व मानना अधिक सगन ठहराया है तो कतिपय वाच्य, लक्ष्य तथा ध्वनय तीनों में समानभूति को पूर्ण सम्भव मानते हैं। वाच्य का आत्म पद पाने में ध्वनि तथा रस का द्वन्द्व कहीं तक वास्तविक है? काव्यत्व की दृष्टि से इन दोनों का क्या महत्व है? ध्वनि काव्य का साधन है अथवा साधन है? इत्यादि तात्विक प्रश्नों का हिंदी मराठी क समीक्षकों की मायनाओं के आधार पर विस्तृत समाधान प्रस्तुत किया गया है। अतः ध्वनि तत्व की काव्यगत उपाधेयताओं का भी प्रतिपादन किया गया है।

आचार्य वासन के रीति सिद्धान्तों की भांति कृतक क ध्वनि सिद्धान्त का सम्बन्ध भी प्रायः काव्य की बाह्य अभिव्यक्ति पद्धति से ही है। हिंदी मराठी के समीक्षकों ने 'वक्रोक्ति' को अलंकार रूप में तथा अभिव्यक्ति पद्धति के रूप में

ध्यापक समीक्षा की है। श्रोत्रों के अभिव्यजनावाद और कृतक के दश्रोत्रिनवाद का भी इसी अध्याय में साम्य-व्यपमत्व अध्ययन अत्यन्त विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। आचार्य कृतक ने वक्रोक्ति तत्त्व को वण तथा पद से आरम्भ करके प्रबन्ध काव्य तक ध्याप्त कर दिया है। ऐसी स्थिति में वक्रोक्ति को 'काव्य-जीवित' क्या न स्वीकार कर लिया जाय ? इस महत्वपूर्ण प्रश्न का हिंदी-मराठी के समीक्षकों के विभिन्न मतों के आधार पर ध्यापक समाधान प्रस्तुत किया गया है।

इस शोध प्रबंध का छठा अध्याय औचित्य सिद्धान्त के तुलनात्मक अध्ययन से सम्बद्ध है। इस सिद्धांत की समीक्षा सङ्कृत-साहित्य शास्त्र में ही अधिक नहीं हो सकी है। फलतः आधुनिक हिंदी-मराठी के समीक्षकों ने भी इसका ध्यापक अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया है। फिर भी औचित्य को काव्य या आत्म-तत्त्व मानना कहा तक सगत है ? औचित्य की काव्य में वास्तविक स्थिति क्या है ? सौंदर्यशास्त्र की दृष्टि से औचित्य का क्या महत्व है ? औचित्य सिद्धान्त का जीवन और कला के क्षेत्र में क्या योगदान है ? इत्यादि प्रश्नों का हिंदी-मराठी के समीक्षकों के मता का विस्तृत निरूपण करते हुए समाधान प्रस्तुत किया गया है। अन्त में औचित्य सिद्धान्त की सीमाओं तथा शक्तियों का विवेचन करते हुए इस तत्त्व की काव्य-गत वास्तविक स्थिति का निर्धारण किया गया है।

इस प्रकार हिंदी-मराठी के काव्यशास्त्रज्ञों की रस, अलंकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति तथा औचित्य सिद्धांत से सम्बद्ध विभिन्न धारणाओं, मायताओं तथा अभिमतों का तुलनात्मक अध्ययन काव्यशास्त्र के क्षेत्र में एक अभिनव विनम्र प्रयास है। इससे काव्यशास्त्रगत अनेक प्रश्नों तथा अर्वाचीन जटिल प्रश्नों का सहज समाधान उपलब्ध हो सका है।

काव्यशास्त्र के प्रस्तुत सद्भाषितव तुलनात्मक अध्ययन में मैं 'अन्तिम निष्पत्ति' देने से प्रायः बचता रहा हूँ। मेरी अल्प मति में कम से कम सद्भाषितव चिन्तन में तो शाश्वत और अन्तिम सत्य का विचारण प्रस्तुत निनात कश्चिन् ही नहीं असम्भव-सा है। अतः प्रस्तुत अध्ययन मपूर्वाग्रह से मुक्त रहने का यथासम्भव प्रयत्न किया गया है। सङ्कृत के रस ध्वनिवादी आचार्यों का दृष्टिकोण अपना कर 'रस', 'अलंकार' तथा 'रीति' आदि के सम्बन्ध में प्रस्तुत आधुनिक हिंदी-मराठी-लेखकों के विभिन्न दृष्टिकोणों की प्रत्या-ओचनाएँ की जा सकती थीं। परंतु इन शाब्द-प्रबन्ध का प्रयोजन सङ्कृत-साहित्यशास्त्र के सिद्धांतों में से किसी एक की रस-ध्वनिवादी आचार्यों के दृष्टिकोण से ही शाश्वत सद्भाषिता सिद्ध करने का नहीं रहा है। परिणामतः प्रस्तुत प्रबन्ध में विभिन्न दृष्टियों, चिन्तन प्रकारों तथा मायताओं



गुक्त जी न इम वर्गीकरण म 'मनोविज्ञानिया' का एकात अनुसरण नहा किया है ।<sup>१</sup>

गुक्त जी वं मन म गालदशा की उपयोगिता मुक्तक काव्या की अपेक्षा मनुष्य प्रवृत्ति वा मस्तिष्क परिष्कार करने में समथ उच्च ध्येय पूण प्रबन्ध काव्य या नाटका म विशय रूप स दसा जा सकती है । महाकाव्या तथा नाटका म चरित्र चित्रण का आधार गीलदशा ही है । आलवन का स्वरूप सघटित करने म उपायान हाकर गालदशा रमोत्पत्ति म पूरा योग दती है तथा आलवन के आभ्यतर स्वरूप की याजना भिन्न भिन्न गाला स ही हाती है । अत म गुक्त जी न रामबामो तुलसादास की बिनयपरिना स उाहरण प्रस्तुत कर 'राम की गीलदशा की कायन उपयोगिता पर प्रकाश डाला है ।

डा० नगद्व न स्यायीभावा का पाश्चात्य मानसशास्त्र के सेटिमेन्ट से साम्य-वपम्य लिगान स पूव भावा के मौलिक मनाविकार (Primary emotion) व्युत्पन्न मनाविकार (Derived emotion) तथा मनावत्ति (Sentiment) वं स्वरूप का निरूपण किया ह । इन मतानुसार ससृष्ट-साहित्यशास्त्र

एक अवसर पर एक आलवन क प्रति भावदशा	अनक अवसरा पर एक आलवन क प्रति स्यायी दशा	अनेक अवसरा पर अनेक आलवनो के प्रति गीलदशा
राग	रति	स्नेहगीलता, रसिकता, लोभ, तण्णा, लपटता ।
हाम	(अनभिषेय)	हँसोडपन, बिनोदगीलता
उत्साह	—	धीरता, तत्परता
आश्चय	(अनभिषेय)	भौचक्कापन
गौर	सताप	लिप्तता
श्रोध	बर	श्रोधशीलता, उग्रता, चिडचिडापन
भय	आशका	भीष्टता
जुगुप्सा	बिरति	तुनकमिजाजी

१ 'मनोविज्ञानिया ने 'स्यायीदशा' और 'गीलदशा' के भेद की जोर ध्यान न दे कर दोनों प्रकार की मानसिक दशाओं को एक ही में गिना दिया है'—बहो, पृ० १८७

के रति आदि नो स्यायीभाव एकात्म मानसगाम्त्र के न मौलिक मनोविकार हैं और न व्युत्पन्न मनोविकार ही । शान्त का स्यायीभाव 'शम' तथा अदभुत का स्यायी भाव 'विस्मय' मौलिक मनोविकार म नहीं रखे जा सकने, क्योंकि एक म बुद्धितत्व का प्राधाय है ता दूसरा स्पष्टत ही मिश्र भाव है । दूसरी ओर सभी स्यायीभाव व्युत्पन्न मनोविकार के अतगत भी नहीं रखे जा सकने, क्योंकि इनमें कतिपय स्यायीभावा—भय, त्रास आदि—को मानसगाम्त्र मौलिक मनोविकार मानता है न कि व्युत्पन्न मनोविकार । फलत स्यायी भाव एकात्म न मौलिक मनोविकार है और न व्युत्पन्न मनोविकार ही । जहाँ तक इनके मानसगाम्त्र के 'सेटिमेंट' म साम्य का प्रश्न है, डा० नगद्व की मायनानुसार दोनों में निम्नलिखित साम्य-वैषम्य उपलब्ध होता है—

समता—(१) मनावृत्ति (मटिमेंट) की भाँति स्यायीभाव भी अय (मचारी) भावा की अपेक्षा स्यायी होता है ।

(२) मनावृत्ति की ही भाँति स्यायीभाव एक मनादत्त है, जिसमें अय भाव मचरण करते रहते हैं ।

विषमता—परन्तु दोनों म कुछ मौलिक अन्तर भी है—

(१) मनावृत्ति एक व्याप्त मन स्थिति मात्र है, जिसके मय स्व का अनुभव कभी नहीं हो सकता । मनोवृत्ति के मचारी वा ही आ स्याप्त हो सकता है मनावृत्ति स्वयं का नहीं । उदाहरण के लिए श्लेषभक्ति का आवाहन कभी नहीं होता जब आश्रित या मारा-रीभाव उगाह आदि वा ही होता है परन्तु स्यायी के विषय में यह बात नहीं है, उगवा मचारी ही नहीं वह स्वयं भी ममत्रत आम्बाय है । कष्टर मनोविकार का कारण है स्वयं मनावृत्ति नहीं है, परन्तु भय स्वयं ही मनोविकार है ।

(२) मनावृत्ति तदव ही मनावृत्ति की आवृत्ति म जाती जाना है परन्तु स्यायीभाव के विषय म यह मय नहीं है । तप की आवृत्ति करते रहिये पर वह रति नहीं बन पायगा ।

(३) मनोवृत्ति मदय विचारमूलक है, परन्तु स्यायीभाव (गम को छोड़ कर) विचारमूलक नहीं—प्रवृत्तिमूलक ही है ।<sup>१</sup>

डा० रावेगुण ने भी भारतीय 'स्यायीभाव तथा पादचात्य मानसगाम्त्रोय

सेंटिमेंट की स्वल्प भिन्नता का ही स्पष्टतः प्रतिपादन किया है और दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध स्थापन अमग्न ठहराया है।<sup>१</sup> डा० गुलाबराय न रसो का सामान्य मनोवेग (इमागन) से सम्बन्ध दिखाने हुए रस और मनोवेग का साम्य-व्यपम्यमूत्रक अध्ययन किया है और मनोवेग के मूत्रक में निहित सहज प्रवृत्तियाँ (इन्स्टिक्ट्स) से स्थायीभावा का सम्बन्ध स्थापित किया है। 'स्थायी-भाव और सहज प्रवृत्तियाँ' के प्रसंग में इनके एतद्विषयक विचारा का निरूपण आगे किया जाएगा।

श्री रामचन्द्र मिश्र का स्थायीभाव तथा सेंटिमेंट विषयक अध्ययन मराठी के लेखिका—विद्यापति डा० क० ना० वाटवे, प्रा० ग० श्री० जोग—के अध्ययन पर आधारित है। क० म्यरा पर उनका अपूर्ण अनुवाद मात्र है। अतः इनका स्थायी भाव और सेंटिमेंट विषयक अध्ययन अधिक अस्पष्ट है, इस विषय में इनका सुनिश्चित अभिमत व्यक्त नहीं हो सका है।<sup>२</sup> मराठी के लेखिका का स्थायी और सेंटिमेंट से सम्बद्ध अध्ययन पत्र से श्री मिश्रजी का एतद्विषयक निरूपण स्पष्ट रूप से समझ में आ सकता है।

### सारांश

आचार्य रामचन्द्र गुप्त ने स्थायीभावा तथा स्थिरवृत्तियाँ (सेंटिमेंट्स) का समरूप न मान कर पथक स्थायी दशा का कल्पना की है। इन्होंने परंपरागत रसि स्थायीभाव को ही 'स्थायीभाव' के अंतर्गत माना है और इसके मूल में रस नामक भाव की अभिनव कल्पना का है। डा० नगेन्द्र ने स्थायी भाव और स्थिरवृत्ति में साम्य दिखाने हुए भी दोनों की एकता समता का प्रत्याख्यान किया है। इसी प्रकार डा० राकेश गुप्त के मत में भी स्थायीभाव और

1 for otherwise there is nothing common in the conception of a sentiment and that of a Sthayi bhava. A Sthayi bhava is a latent impression in the mind of the perceiver and is called forth when he perceives a poetic phenomenon. Suggesting that particular mental state with the help of the vibhavas etc., a sentiment is a latent feeling of attachment of particular ideas existing, a particular emotion with a definite objective phenomenon. It cannot be linked with sentiment. Psychological studies in Rasa P 129

सेटिमेंट एक्स्प नहीं हैं। डा० गुलाबगय स्यायी भावा का सम्बन्ध सेटिमेंट्स से नहीं, वरन् 'महज प्रवृत्तिया (इन्स्टिक्ट्स) से मानत हैं।

स्यायीभाव और स्थिरवृत्ति (सेटिमेंट)

मराठी में

हिंदा की भांति मराठी के आयुनिर्णय समीक्षका ने भी स्यायी भावों का मानसशास्त्र के आधार पर व्यापक अध्ययन किया है। मराठी के समीक्षका में भाव के स्वरूप के विषय में जैसा मन-श्रविष्य है वसा ही स्यायीभाव और स्थिर-वृत्ति (सेटिमेंट) के साम्य तथा व्यपन्न के विषय में है। स्यायीभाव और स्थिर-वृत्ति (सेटिमेंट) का साम्य-व्यपन्नमूलक अध्ययन डा० व० ना० वाटवे, श्री २० के० कच्छर, श्री रा० श्री० ज्ञान श्री दि० व० प्रेडेकर, डा० रा० दा० वाळिव, डा० सुरेंद्र वाग्लिय आदि ने प्रस्तुत किया है। इनमें डा० व० ना० वाटवे के अतिरिक्त गोप मभा समीक्षक रम मिद्वान के स्यायीभाव और मानस-शास्त्र की स्थिरवृत्ति (सेटिमेंट) में साम्य-व्यापन मकया अनुपयुक्त समझते हैं। अतः प्रथम डा० वाटवे की छतद्विषयक व्यापनामा का विस्तृत निरूपण आवश्यक हो जाता है।

डा० व० ना० वाटवे ने स्यायीभाव और सेटिमेंट में अतः साम्य-व्यापन से पूरे दाना के पारस्परिक अंतर का भी स्पष्टीकरण कर दिया है और इस अंतर का महत्वहीन मिट्ट बनने का समुचित विवेचन किया है। इनके अनुसार स्यायीभाव और सेटिमेंट में पारस्परिक भिन्नता इस प्रकार है—

१. मनुष्य के आचार्य स्यायीभावों का परिनिष्पन्न 'उत्पन्न (जन्मजात) स्वयंदिग्ध और अविनाशी मानत हैं जब कि मानस शास्त्र में सेटिमेंट्स को नष्टादित (असामयिक) विनाशील और कड़ा-कड़ा हानशील मानते हैं।

२. मनुष्य के भाविकशास्त्र में महद्वयगत स्यायीभावों का ही उद्भव है, शास्त्रगत पात्रों के स्यायीभाव का स्पष्ट उद्भव नहीं है। इनके विपरीत मानस-शास्त्र का न्यायवादवादी महद्वयगत सेटिमेंट्स की स्थिति और स्वरूप का विवेचन नहीं करता। अधिक से अधिक काव्यगतपात्रों में सेटिमेंट्स की स्थिति का पूर्ण निरूपण मिलता है।

उपरोक्त दाना गवाआ का डा० वाटवे के अनुसार समाधान इस प्रकार है— अभिनवगुप्त के मन में महजप्रवृत्ति (Instinct) का घटक ही मुख्य रूप से होगा, अतः उद्भव स्यायीभावों के परिनिष्पन्न कहे हैं। अभिनवगुप्त

इस विषय में तीन शब्दों का प्रयोग करते हैं—'वासना', 'सविद्' और 'चित्तवृत्ति'। वासना में उनका अभिप्राय Instinct अथवा Appetite में रहा होगा और 'सविद्' में Concrete general Sentiment तथा चित्तवृत्ति का अभिप्राय Mental Condition से होगा। समस्त मानसशास्त्र के अभाव में इस प्रकार का वर्गीकरण और भेद करना कठिन था अतः उनके विवेचन में दोष निवारक देना है फिर भी सामान्य रूप में उपयुक्त प्रतिपादन उपयुक्त समझा जाना चाहिए।

वासना, सविद् और चित्तवृत्ति शब्द अभिनवगुप्त के मतानुसार स्थायी-भाव के वाचक हैं। उनके अनादि वासना स्वरूप में वे 'उपात' (जन्मजात) और परिनिष्पन्न होते हैं परन्तु स्थायीभाव केवल सहजप्रवृत्तिरूप अथवा अनादि वासनारूप मात्र नहीं है। क्योंकि प्रायः सभी का मत है कि स्थायीभावरूप स्थिरवृत्ति के चारों ओर उत्तर द्वितीय प्रकार का भावनाएँ एकत्रित होकर उसका परिपोष करती हैं। वेचन Instinct के विषय में भी ऐसा सम्भव नहीं है। इतना ही नहीं बल्कि Emotion (प्राथमिक भावना) भी Sentiment नहीं है। साराण स्थिरवृत्ति (Sentiment) की रचना उसके घटका की सूक्ष्म छान-छान करना पहले कठिन था अतः उसके उपजतवृत्ति के स्वरूप की ओर ध्यान देकर अभिनवगुप्त ने उसे परिनिष्पन्न माना है। इस प्रकार प्रथम शब्द का समाधान हो जाता है। मस्मृत मानसशास्त्रकारों की सामान्य धारणा पर ध्यान देने से इस विषय में शब्दों के निम्न स्थान ही नहीं रह जाता कि उनका स्थायी भाव' से अभिप्राय Sentiment में ही है।<sup>१</sup>

स्थायीभाव की भाँति 'मिष्टिमद' का भी रगिकगत मानने में मानसशास्त्र का विरोध विरोध नहीं है। मस्मृत में भी अभिनवगुप्त के वचन—'जात एव हि जन्तु इमनीभिः सविद्भिः परानामवृत्ति' का आधार पर स्थायीभाव को प्राणगत, कविगत और रगिकगत मानने में आपत्ति नहीं आती। भट्टलाल्लट, शकुन्तल और

१ वासना सर्वेषां अनादिवासना चित्रोद्धतचेतसा वासना सवादात (अभि-  
नवभारती प्र० स० पृ० २८१)

सविद्-जात एव हि जन्तु इयतीभिः सविद्भिः परीतो भवति (अभिनव  
भारती प्र० स० पृ० २८४)

चित्तवृत्ति—'नहि एतन्चित्तवृत्ति वासनागूय प्राणो भवति'

केवल वस्यचित् वाचिदधिका चित्तवृत्ति, वाचिदूना  
पृ० २८४ —रसविमर्श पृ० ११५

भट्टनायक काव्यगत पात्रों में स्थायीभाव की स्थिति का निर्देश कर चुके हैं। नाट्य रूप में 'रस' का काव्यगत और रसिकगत उभयविध माना गया है।

बकूगल, प्रा० थावल्स आदि मानस शास्त्रज्ञों ने स्थिरवृत्ति के दो वर्ग बनाए हैं, एक मूल वस्तु विषयक (Concrete) और दूसरा अमूल वस्तु विषयक (Abstract)। मूल वस्तु विषयक स्थिरवृत्ति के भी मूल जाति विषयक (Concrete general) और मूल व्यक्ति विषयक (Concrete particular) दो प्रभेद विधे हैं। इनमें मूल जाति विषयक स्थिर वृत्ति सामान्यतः सत्जात, सर्वसामान्य है, परन्तु रसिक निष्ठ मानने में मानस शास्त्र की व्याप्ति नहीं है। अर्थात् मूलजाति विषयक स्थिरवृत्ति मन में दृढ़ होने के लिए किमी का भा—चार वह रसिक, कवि, काव्यस्थ नायक या प्रेक्षक वार्द भी हा—मूलव्यक्ति विषयक स्थिरवृत्ति का पूर्वानुभव अपेक्षित है।

एक अन्य दृष्टि से भी मानसशास्त्र में रसिकगत स्थिरवृत्ति का सर्वत मिल जाता है। मानसशास्त्र में पाष्यानन्द के विवेचन में 'वामना नियंत्रण सिद्धांत' (Repression Theory) है। इसमें पाठक व काव्य-अध्ययन-जाति आनन्द का विवेचन करते हुए कहा गया है कि उमरे मन में प्रेम, श्राय, भाति इत्यादि भावनाएँ मुप्त अथवा परिस्थिति नियंत्रित होती हैं। इन दमित वागनाओं में 'सेटिमेंट' (Sentiment) का समावेश तो होगा ही। पाष्यानन्द की 'थ्रीडिपसिथि' (Psy theory) और 'पासशास्त्रोक्त 'एम्पथी' (Empathy) नामक तथ्यावस्था में 'रसिकगत स्थिरवृत्ति' (Sentiment) को मायता प्राप्त ही है।

इस प्रकार 'स्थायीभाव' और 'सेटिमेंट' व 'एम्पथिक' ब्रह्म का निर्दिष्ट करती वाली 'नायक' का समाधान करने के उपरान्त डा० वाटव ने दाना के पारस्परिक तिनात शास्त्र का प्रतिपादन भी मानसशास्त्र व व्यापार पर ही करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने भावनाओं के प्राथमिक (Primary), मिश्र (Blended) और साधित (Derived) तीन रूपा का निरूपण किया है। इनमें प्राथमिक भावना का सम्बन्ध किमी न किमी प्रमुख महजत्रवति (Instinct) में माना है क्योंकि व किंगिष्ट विषय का दाने अथवा चिन्तन में मा में महत्ता उद्भूत होती है। बुद्धि एक स्वतंत्र शक्ति है, दर्शा शक्ति में शाय प्रेरणा का निर्माण होता है। प्राथमिक भावनाओं का ही वृत्ति अथवा स्थिरवृत्ति बन सकती है, क्योंकि व स्पष्ट विरवात् ता स्थिर रहनेवाली (Enduring) होती है। उन्ने पाठे प्रणा (Conation) होती है। मनोपन के स्वतंत्र, श्रेष्ठ और

कार्यो-मुख होती हैं। इन्ही भावनाओं का उद्दीपन पुन-पुन किसी विशिष्ट विषय द्वारा होने पर स्तर (Secondary) भावनाएँ उनके चारों ओर जमने लगती हैं और इन्हीं की स्थिरवृत्ति बनती हैं, ये ही स्थायीभाव हैं। डॉ० वाटवे ने 'स्थायीभाव' और स्थिरवृत्ति (Sentiment) में साम्य प्रदर्शन के लिए निम्न हेतु भाँटिये हैं—

१ स्थिरवृत्ति में एक ही प्राथमिक भावना अतः तब रहती है और उसमें द्वार द्वितीय प्रकार का भावनाएँ गुम्फित होती हैं इसी को अभिनवगुप्त ने 'सूत्र-मणि' के दृष्टान्त में सिद्ध किया है।

२ स्थिरवृत्ति प्राथमिक भावनाएँ स्थिर रहती है और इन पर द्वार द्वितीय भावनाओं की लहरें टकराना हैं फिर भाँटे मूल भावनाएँ नष्ट नहीं होती बल्कि उन द्वार द्वितीय भावनाओं का आत्मसात कर लेती हैं। तब विषय में धनजय का सागर कल्लोल दृष्टान्त बिनना समभव है। तरंगों और सागर जलरूप होते हैं, इसी प्रकार प्राथमिक और द्वितीय काटि का भावनाएँ भाव रूप ही होती हैं। प्रेम की अवस्था में अविराधी प्रेम आगा स्थिरवृत्ति सजातीय और जुगुप्सा शोध दुःख इत्यादि विजातीय भावनाओं की तरंगें यद्यपि प्राथमिक भावना के सागर में उछलती रहती हैं फिर भी प्रेम' हर प्रकार से उन्हें आत्मसात कर लेता है। व तरंग समुद्र में ही विलीन हो जाती हैं तभी प्रकार उन भावनाओं का प्रेम में ही पयवसान होता है।<sup>१</sup>

३ स्थिरवृत्ति की प्राथमिक भावना विषय के दर्शन से अथवा चित्त से उद्दीपित होती है सन्भाव में सुप्त रहती है और सहजप्रवृत्ति के रूप में चित्त में सन्भाव विद्यमान रहती है।

४ मनुष्या में जन्मे राजा वम ही प्राथमिक भावना द्वार द्वितीय भावनाओं से थप्ट होती है और वह जन्म तथा गुण से भी थप्ट होती है। प्राथमिक भावना आगा का स्वतंत्र गति होती है उनमें द्वार द्वितीय भावनाओं को अपनी आर आकर्षित करने का गति होता है और उनका स्वतंत्र ध्यय हाता है, फलतः आनन्द, दुःख आगा, निरागा, बिना जमा भावनाओं सन्भाव उनकी सहायक बन कर रहती हैं।

५ काय में मुख्य आम्बाह भावना प्राथमिक भावना ही हाता है, अतः उसी की मुख्य रूप में चवणा होती है। इस चवणा में द्वार द्वितीय भावनाओं की मिठास क

१ विशदरविद्वर्या भावविच्छिद्यत न य ।

भी विचित्र सम्मिश्रण रहता है, परन्तु मुख्य रस वनना है प्राथमिक भावनाओं का ही।<sup>१</sup>

विवेचन

स्थायी भाव और स्थिरवृत्ति (Sentiment) का स्वरूप

लगभग दो हजार वर्ष पूर्व भर्तृमुनि ने जिन आठ स्थायी भावों का निरूपण किया है, क्या वे आठ स्थायीभाव १९ वीं शताब्दी में विकसित मनाविज्ञान के एक भावामय तत्त्व 'स्थिरवृत्ति' (सटिमेंट) से पूणत ममता रखते हैं? क्या 'सटिमेंट' और स्थायीभाव के एकीकरण से स्थायीभाव का मूल स्वरूप स्पष्ट हो सकती है? प्रस्तुत समीक्षण में रस सिद्धान्त में व्यापकता या मनावनानिकता का मकनी है? इत्यादि प्रश्नों का समाधान ढूँढने के लिए कुछ विन्तन विवेचन अवशेषित है।

जहाँ तब स्थायीभाव का भर्तृमुनि के अनुसार स्पष्टीकरण है वह रस प्रसार है—'जिन प्रकार एक समान हाथ-पद उदर रखने वाले समान लक्षणों में युवक पुत्र पुत्र, गौरी, विद्या, धर्म, शिल्प विचक्षणता के कारण राजा जन होते हैं और दूसरे अपेक्षित के मनुष्य उनसे अनुचर होते हैं इसी प्रकार विभाव अनुभाव, तथा व्यभिचारी भाव स्थायीभावों के आश्रित होते हैं, जहाँ स्वामीवृत्त्य स्थायी भाव होते हैं और अन्य भाव सब रूप हैं। इसी विभाव, अनुभाव मचारीभावों से घिरा हुआ स्थायी भाव ही रस मना को प्राप्त होता है।<sup>२</sup>

भर्तृमुनि की स्थायीभाव सम्बन्धी मायता पर ध्यान देने से स्पष्ट होता है कि उन्होंने अभिनव गुप्त के मतानुसार स्थायी भावों का वही भी वागना, मविद् या चित्तवृत्ति आदि विविध 'रस' द्वारा विवेचन नहीं किया है। उन्होंने इसे भाव रूप ही माना है—'रतिनाम आमोदात्मको भाव'। रति आदि भाव ही हैं परन्तु वे स्थायी इसलिए कहते हैं कि वे स्वामी रूप हैं और विभाव, अनुभाव तथा मचारी भाव सब रूप हैं।

पाश्चात्य मनाविज्ञान में मानसशास्त्रज्ञों ने 'सटिमेंट' की विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं। सामान्य त्रिणी विविध ध्यनि, वस्तु अथवा परिस्थिति के प्रति मन में त्रिणी प्रकार का भाव उत्पन्न होता है, तब वह 'सटिमेंट' का रूप धारण कर

१ रसयिम्गा, पृ० ११८-११९।

२ दे० नाट्यशास्त्र, अ० ७, श्लोक ७ के उपरान्त का एक भाग

३ वही, ७-८



लता है उदाहरणार्थ किसी व्यक्ति के प्रति मन में काय की भावना याग या उत्तमिन् होता है तब वह भावना वर का रूप धारण कर लता है जिस सति मर बहा जा सकता है। मानसशास्त्रन मरडूगल का मत है— भावात्मक सस्कार का मगठित प्रक्रिया का नाम स्थिरवृत्ति (मटिमट) है जो किसी वस्तु का प्रतीति पर कद्रिन रहती है। १ वरवय न भा लगभग इसा प्रकार का स्पष्टीकरण किया है मनाविज्ञान म इस मर (मटिमट) का प्रयाग किना वस्तु व्यक्ति अथवा परिस्थिति के प्रति अनमूति का जवम्या म निमाण ज्ञान वाली मिश्रित भावात्मक वृत्ति के अय म जाता है। २ स्थिरवृत्ति (मटिमट) क मर म प्राथमिक Primary और मिश्रित (Blended) भावनाग जाता ३ तथा उही का एक सघटित रूप सटिमट है। इसी आणय को १० जा० टर न इस प्रकार अभिव्यक्त किया है— कनिषय विषय व्यक्ति और जाणों के प्रति हम मौलिक और मिश्रित दोना प्रकार के भावा का जनभव करत ३ जिसम किण्ण्ट विषय और व्यक्ति के प्रति नमार मर मरारा का एक मरिचन ममगठित सघ बन जाता है जिस मनाविज्ञान म सटिमट बन जाता ३। ३

मानसशास्त्रना न मटिमट या स्थिरवृत्ति का जनना महजप्रवृत्तिया (इंस्टिंक्त्स) का माना ३। एय न पसार की स्थिरवृत्ति के निर्माण म अनक प्रकार का मर प्रवृत्तिया गहायन हारी ३। उदाहरणार्थ अपन घर के प्रति निर्मित स्थिरवृत्ति (गारमर) म मरह न मर प्रवृत्ति (Hoarding Instinct) और आसनमान (Assertion) का प्रवृत्तिया नाम रहती है। मरडूगल महाणय न स्थिरवृत्ति के निर्माण के मूर म मर प्रवृत्तिया का आधार स्वरूप माना है। मर प्रवृत्तिया (Instincts) की स्थिरवृत्ति का जननी हैं। सहजप्रवृत्तियो

- 1 Sentiment is an organised system of emotional dispositions concerned about the idea of some object Social psych p 137
- 2 This term is used in psychology to refer to any complex emotional attitude built up in the course of experience psych W p 301
- 3 We tend to experience both primary and blended emotions in connection with certain objects and persons and these and this points to a definite and systematic organization of instinctive dispositions around the objects and persons of a very mixed kind Such organizations are called sentiments (Arching Psychology Changing outlook p p 68 9)

और उनकी सहचर भावनाओं का प्राथमिक (Primary) भावना कटा जाता है। मंडूगल ने १४ सहज प्रवृत्तियाँ (इन्स्टिक्ट्स) तथा उनकी अनक सहचर भावनाओं का निरूपण किया है। डा० वाटवे ने मंडूगल के 'भावों' के मानस-शास्त्रीय विवरण का आधार लेकर 'रति' आदि स्थायीभावों का स्थिरवृत्ति ('सिटिमेंट') निधारित करने का प्रयत्न किया है। जहाँ तक स्थायी और 'सिटिमेंट' के साम्य का प्रश्न है, यह इस तथ्य पर आधारित है कि स्थायी का तात्पर्य स्थिर और परिपुष्ट भाव है तथा 'सिटिमेंट' भी एक 'स्थिर' भाव है, जिस अनक सहज प्रवृत्तियाँ (इन्स्टिक्ट्स) के सस्वार या भाव परिपुष्ट करते हैं। उदाहरणार्थ 'देश-प्रेम' की स्थिरवृत्ति (सिटिमेंट) में विदेशियों से द्वेष, स्वदेशीकरण का प्रेम, देश-प्रेम पर आतंक और उसके अपक्ष पर खेद आदि सहचर भावनाएँ 'देश-प्रेम' रूप स्थिरवृत्ति (सिटिमेंट) को परिपुष्ट और स्थिर बनाती हैं। सिटिमेंट या स्थिर-वृत्ति के मूल में स्थित सहज प्रवृत्तियाँ (इन्स्टिक्ट्स) और उनकी सहचर भावनाओं भारतीय काव्यशास्त्र में निरूपित मंचारी भावों के सदा प्रतीत होने लगती हैं, परन्तु पाश्चात्य सिटिमेंट (स्थिरवृत्ति) का भारतीय काव्यशास्त्र में स्थायी भावों के समान प्रतिपादन किया गया है। वस्तुतः स्थायी भाव और पाश्चात्य मनाविज्ञान के सिटिमेंट में साम्य का आभास मात्र है मूलिक साम्य नहीं है। क्योंकि रति आदि स्थायी भावों के विषय में मन्वन्तमार्हित्यशास्त्र में विभिन्न स्पष्टीकरण हैं, भरतमुनि के मत में स्थायी रूप विविध विभिन्न भाव स्थायी हैं जो विभाव, अनुभाव और मंचारियों में परिवर्तित रहते हैं। मंचारी भावों में परिवर्तित स्थायीभावों का रूप बन जाता है। भरतमुनि की रम-व्याख्या मनाविज्ञान के 'सिटिमेंट' के निदान मन्वन्त प्रतीत होने लगती है, क्योंकि 'सिटिमेंट' भी अनक सहचर भावनाओं में जावत रहता है रम रूप का प्राप्त स्थायी भाव भी अनक मंचारियों से आवृत्त रहता है। इसके अनिश्चित भरतमुनि ने रति आदि स्थायी भावों के जन्मजान होने अथवा अनुभवगणित (Acquired) होने का स्पष्टीकरण नहीं किया है, उन्हीं रत्नादि स्थायी भावों को भी भाव रूप ही माना है— 'रतिर्नाम आमारात्मना भावः'। परन्तु अभिनव गुप्त ने रत्नादि स्थायी भावों को 'जन्मजान', 'वामनात्म्य' में स्थित सिद्ध किया है। परन्तु डा० वाटवे ने अभिनव गुप्त प्रयुक्त 'वामना', 'गविद्' और चित्तवृत्ति गणना का अर्थ आधुनिक मनाविज्ञान के अनुरूप स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। यहाँ का मूल प्रश्न उपस्थित होने है—

१ क्या सचरियो से परिवर्त स्यायी के परिपुष्ट रूप—'रस'—को मनो-  
विज्ञान के 'सिटिमेट' ( स्थिरवर्ति ) के अनुरूप समझा जाय ?

अथवा

२ मूलन रति आदि भाव रूप स्यायी को ही 'सिटिमेट' माना जाय ?

सम्बन्धित साधनात्मक म स्यायीभाव और रसा का विवेचन मनाविज्ञान के 'सिटिमेट' म निम्नान भिन्न है। दाना म साम्य-स्थापन क लिए मसृष्ट आचार्यों की भायनाशा का जागृनिक मनोविज्ञान के अनुसार भिन्न अध म स्पष्टीकरण क अनिश्चित अय का उपाय ही नहा था फलतः डा० वाटव ने वामना 'मक्ति' आदि गन्ना रा अपनी भायता के अनुकूल जय परिवर्तन का प्रयत्न किया है। उहान वामना का मन्त्र प्रवर्ति और स्यायी का 'सिटिमेट' मिद्ध करत हुए यह भा मरन कर लिया है कि चनि सिटिमेट के मूळ म बीज रूप से महज प्रवृत्तिया हाता हैं और य जमजान हाती हैं जत व्यावहारिक दष्टि स 'सिटिमेट' को भी महजान मानन म कार् अनौचित्य नहा है।<sup>१</sup> जत महज प्रवृत्तिया और उनकी महजर भावनाशा क आधार पर स्यायी भावा रा प्रामाद 'सिटिमेट' क रूप म रस रगन का प्रयन किया जाने गगा ता रति स्यायी के बाद 'गाक' को स्यायी भाव मिद्ध करन का कठिनाई अनुभव हान लगी— इस दष्टि स करण रस के विषय म बनी कठिनाई उपस्थित हाता है। करण रस का स्यायी भाव 'शोक' प्राथमिक भावना (Primary) रूप नही है। शोक माधित (Derived) भावना अर्थात् मचारी है। तत प्रश्न है कि प्रस्रुत सचागी भावना का रसत्व कम प्राप्त होता है ?<sup>२</sup> डा० वाटव न 'गाक' को स्याया मिद्ध करने के लिए तीन हनु प्रस्तुत किय हैं—(क) 'गाक' भावना आस्वाद्यता का कमीटी पर पूरी उतरती है अत उग माधित (Derived) भावना को भी स्यायी माना जाय। (ख) वास्तविक 'गाक' म मात्रता आन का कारण चिरवियुक्त व्यक्ति पर निहित प्रेम है, अत शृंगार, वामनय इत्यादि भावनाशा का स्यायी भाव सत्रमित हाकर 'गोक' म आ जाना है।

(ग) करण भावना के रसत्व मिद्ध करन का एक अय भाग है, वह है सहा-  
नुभूति का। मकगल न इस भावना का मन्त्रध मधवर्ति से स्थापित किया है और उम प्राथमिक कहा है। उमम कामल भावनाओ का समावग होता है।

१ रस विमल पृ० ११६

२ वही पृ० २४८

इस प्रकार दूसरो के दुःख में दुःखी होना एक सहानुभूति का प्रकार है और इसमें 'सात्व' का समावेश किया जा सकता है।<sup>१</sup>

डा० वाटवे के उपर्युक्त तीनों हेतुओं का प्रा० द० के० वेड्जकर ने सयुक्तित्व प्रत्याख्यान किया है और मूलभूतता की कमीटी का अपर्याप्त ठहराते हुए लिखा है—“मूलभूत भावना अर्थात् स्थायीभाव और साधित भावना अर्थात् व्यवभिचारी भाव, इस प्रकार का वर्गीकरण मैन्डूगन ने नहीं किया और यह उसका उद्देश्य भी नहीं था उठाने भावनाओं का जो वर्गीकरण किया है वह प्राथमिक (Primary) समिश्र (Blended) और साधित (Derived) तीन प्रकार का है। इस वर्गीकरण का तब और बाप में प्रभावी होने वाली भावनाओं और साधारण या अप्रभावी भावनाओं के निर्धारण का तत्त्व भिन्न भिन्न है। प्राथमिक, समिश्र और साधित भावनाओं का वर्गीकरण करना आवश्यक था और भावों पर बड़ा तब घटित हो सकता है, इसकी छानबीन करना आवश्यक था और डा० वाटवे ने उमी प्रकार का प्रयत्न किया है। परन्तु इस माग में जाते हुए वरण जैसे प्रमुख रम का स्थायी मिश्र करने में बटिनाइयाँ उपस्थित हो जाती हैं सामान्य मनोवृत्तियाँ में कौन सी प्राथमिक अथवा मूलभूत मनावृत्तियाँ मानी जायें, इस विषय में मानसशास्त्र का प्रतिपादन स्वीकार करने पर भी वाय्व्यास के लिए यह निर्धारित करना कि प्राथमिक भावनाओं ही मुनिश्चित मर्या और स्वरूप में ही स्थायीभाव और रमत्व का प्राप्त हानी हैं, निष्प्रयोजन है।<sup>२</sup>

प्रा० वेड्जकर के अतिरिक्त प्रा० रा० श्री० जोग प्रा० दि० के० वेडेकर, डा० वॉल्डे, डा० बार्गलियो आदि न रम मिद्धात के स्थायी भाव और मानस-शास्त्रीय 'मटिमट' के समीकरण पर आपत्तियाँ उठाई हैं तथा प्रस्तुत साम्य प्रदान की अनुपयुक्त ठहराया है।

प्रा० जाग ने अभिनव वाप्य प्रकाश के तीसरे सम्बन्ध में परिशिष्ट लिखकर 'स्थायीभाव' और 'मटिमट' के समीकरण पर मुख्यतः दो आपत्तियाँ उठाये हैं (१) स्थायीभाव मन्वृत आचार्यों के अनुसार जमजात होत हैं परन्तु मानसशास्त्र में दृष्टे गपादिन (Acquired) मानते हैं। (२) मटिमट विशिष्ट विषय निष्ठ होत हैं, परन्तु स्थायीभावा के लिए यह अनिवार्य नहा है। मन्वर अनुभव तथा प्रमगवण स्थायीभावा में मटिमट का म होगा, परन्तु प्रेम की मूलभावना की

१ रत्न विमला, प० २४८-४९।

२ वाय्व्यालोचन त० स० पृ० १४२।

सेटिमेन्ट' नहीं कहा जा सकता। किन्तु 'यक्ति के मन में भय का विषय अथवा श्राप का विषय स्थिर रूप में नग्न होना' ध्वनि-बोध-वाचक में उक्त श्राप अथवा भय का अनुभव होता है प्रस्तुत श्राप या भय की अनुभूति उत्पन्न भी हो सकती है परन्तु इस 'सेटिमेन्ट' नहीं कहा जा सकता। इसी प्रसंग में रमानुभूति के लिए सहृदय के चित्त में भय अथवा श्राप के स्थिर भावबोध (सेटिमेन्ट) की पहले से ही स्थिति अनिवार्य नहीं है। रम-निष्पत्ति में स्थायी भाव आवश्यक हैं, परन्तु सेटिमेन्ट स्थिरवृत्ति या भावबोध की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। यदि सहृदय के मन में किसी विनिष्ट विषय के सम्बन्ध में पहले से ही भावबोध (सेटिमेन्ट) निर्मित है तो नृत्यप्रधी विशिष्ट रस का अनुभव उसे अधिक तीव्रता से होगा, परन्तु उसके अभाव में रम-निष्पत्ति और रम-परिष्पुष्टि नही होगी, यह कहना अनुपयुक्त है।<sup>१</sup> भरतमुनि प्रतिपादित ४० भावा-म-वृत्तिपथ शारीरिक, वृत्तिपथ चान्दमक तथा वृत्तिपथ भावनात्मक अवस्थाएँ आती हैं परन्तु भरतमुनि सभी का भाव के अन्तर्गत रखते हैं इसका कारण श्री० दि० क० वेङ्कट के मतानुसार भरतमुनि का भाव में अभिप्राय मानवा मनाविचार (Feelings) अथवा (Emotions) में नहीं है अपितु भाव का अर्थ शक्ति रूप से समय-किसी पदार्थ का भाव अथवा पदार्थ में जगभूत तथा विनिष्ट प्रक्रिया से कायप्रवृत्त होनवाली शक्ति में है।<sup>२</sup> फलतः जाटा स्थायीभावा का प्रार्थमिक साहित्य अथवा स्थिर-वृत्ति रूप मानव की विचारधारा का इतना प्रबल प्रत्याख्यान किया है।<sup>३</sup>

इतना जाटा स्थायीभावा का मूर्च्छित मानवी मनाविचार न मानकर इन्हें का-श्राप (चान्दमकविषय) का भावना कराने वाले विच्छिन्न पदार्थ के रूप में ही माना है। भय स्थायीभाव का उत्पत्ति-रूप के रूप में अपन आणव्य को इस प्रकार में स्पष्ट किया है भय स्थायीभाव का अर्थ सहृदय अथवा नट का मनो-विचार नहीं है वह तो एक नाट्य भाव है नाट्य में दृश्यत के वाण से भयभीत होकर प्रणय से भाग नट नाट्यमूग का 'नाट्यभय' ही एक नाट्य भाव है (जा 'भय स्थायीभाव' कहा जाता है)। भय नाट्यभावा परिणामस्वरूपी (प्रभावित) मनाविचार नहीं है किन्तु स्वयं का-श्राप- (चान्दमविषय) का प्रभावी (भावित) करने वाला एक विच्छिन्न पदार्थ है।<sup>४</sup> इतना मन में नाट्यभावा को सहृदय

१ अभिनवशास्त्रप्रकाश पृ० १२२ १२३

२ विस्तार के लिए ३० 'भाव प्रकरण'।

३ रंग सिद्धांतार्थ-स्वहय (नवभारत मासिक, नवम्बर और दिसम्बर १९५०)

४ यथा।

की चित्तवृत्तियाँ मानने के भ्रमवादी ही स्थायीभावोंको प्राथमिक स्वयमिद्ध या सावत्रिक मानने की कल्पनाएँ निकली हैं।

भरतमुनि ने ४९ भावों में आठ भावों को ही स्थायी की मजा क्यों दी है ? तथा इन्हें दूसरा से अधिक शक्तिशाली अथवा 'स्वामी रूप' क्यों कहा है ? इसका उत्तर श्री वेडेकर के मत में 'मानसशास्त्र नहीं दे सकता, बल्कि मानसशास्त्र को पूर्य कर ही स्थायीभाव का अर्थ निकालना चाहिए। आठ रसों से स्थिर सम्बन्ध रखने के कारण ही इन्हें स्थायी कहा गया है।'<sup>१</sup>

डा० वाळिवे ने श्री वेडेकर के भाव विषयक प्रतिपादन को मामाद्य रूप में स्वीकार करते हुए भी 'भावों के भावनात्मक या मनोविकारात्मक अर्थ के एकांत प्रत्याख्यान को स्वीकार नहीं किया है। इन्होंने स्थायीभावों का तात्पर्य 'इमोशन' या भावना के रूप में ही ग्रहण करना उपयुक्त माना है। भरतमुनि निम्नलिखित रस तथा स्थायीभावा की सजाओं पर मूढम रूप से दृष्टिपात करने पर स्पष्ट हो जाता है कि "आठों स्थायीभाव भावना या इमोशन" के अतगत ही रहने लगे।"<sup>२</sup>

स्थायीभावाओं को 'भावना' या 'इमोशन' रूप स्वीकार करने के उपरांत इनका मानसशास्त्र के 'सिटिमेंट' तथा 'इन्स्टिक्ट्स' से सम्बन्ध स्थापित करना इनके मत में अवगण्य है। डा० वाडेवे की स्थायी और सेटिमेंट के समीकरण की भावना का तथा प्रा० जोग की स्थायी और इन्स्टिक्ट्स की समरूपता की स्वीकृति का प्रत्याख्यान करने हुए इन्होंने लिखा है "रति, प्रीति इत्यादि आठ स्थायीभाव अथवा गहनप्रवृत्तियाँ हैं ऐसा प्रा० जोग को प्रतीत होता है यह उपयुक्त नहीं है और स्थायी का अर्थ डा० वाडेवे के अनुसार जो 'सिटिमेंट' समझा गया है, वह भी उचित नहीं है।' स्थायीभावों को सेटिमेंट अथवा इन्स्टिक्ट्स मानना इसलिए भी उचित नहीं है कि मानसशास्त्र में निरूपित इनकी परिभाषाएँ स्थायीभावाओं पर तनिव भी नहीं पड़ पाती हैं। श्री आनंदकुमार स्वामी ने भी स्थायीभावों को इमो- 'गस' ही कहा है।<sup>३</sup> अतः डा० वाळिवे के मत में स्थायीभावों को 'इमोशन' या मनोविकार रूप ही मानना चाहिए।

१ रस सिद्धांताचे स्वल्प ( नवभारत, मासिक, नवम्बर और दिसम्बर १९५०)

२ सा० मोमाता पृ० ११२

३ वही पृ० १२१-२२

डा० वार्लिंग न रम-स्वरूप पर मौखिक चिंतन उपस्थित करने के साथ स्थायीभावों के विषय में भी अपनी मायना प्रकट करती है। इन्होंने स्थायीभावों का निरूपण न तो नितान्त भगवतमति की मायना के आधार पर किया है और न इन्होंने वाच्य की भाँति मानमात्राया मतिमट के समकक्ष ही स्वीकार किया है। डा० वार्लिंग के समान अज्ञान भा स्थायीभावों के 'इमोशन' या भावनात्मक स्वरूप का भी प्रतिपादन किया है। डा० वाटव की 'स्थायीभाव और सटिमट' के समारण की मायना का प्रयोगान करने के उपरान्त इन्होंने लिखा है 'यह माय है कि मत्र प्रणना न जिना स्थायीभाव उपन नहीं हात परन्तु सामाय रूप में स्थायीभावों का मत्र प्रणनाया न पर्युष्ट इमोशन (Emotions) कहा जा सकता है। भगवतमति के वचना में प्रस्तुत मत अनिश्चित रूप से ध्वनित नहीं होता। उनका स्थायीभाव में जाय मानमित्र अवस्था मात्र प्रतीत होता है। यह बात अत्र है कि प्रस्तुत अवस्था भावना में अर्थात् इमोशन होगी। स्थायी भाव मत्र अय स्थित या मत्र हुआ है। स्थायी भाव से तात्पर्य विभाव, अलभाव और अभिचार भावों के पाठ स्थित भाव अर्थात् नट जिसका आविष्कार करते हैं वह भाव न हाकर कवि और गहन्य मनस्य भाव से है। रगमच पर यदि मामाया 'यक्ति नाथिका से शृगाणिक चपटाग कर रहा हो तो वहाँ स्थायी भाव रति नया हागा क्योंकि कवि के मन में अजवा महान्य के मन में उक्त प्रमग म अथवा उम समय रति नहा होगा। रति का अपथा प्राय विनाट या इसी प्रकार का काँ अवस्था मन्त्र्य की हागा और वगा ही अवस्था कवि के मन में भी प्रमग निमाण के समय हागा और नटवग भी अभिनय द्वारा उमी प्रभाव का प्रधना के मन पर डागन का प्रयत्न करगा।'

एक प्रकार डा० वार्लिंग ने स्थायीभावों को मतिमट न मानकर इनकी उभयामर—रति तथा महान्यगत स्थिति स्वीकार का है और इनका स्वरूप परिष्कृत भावनात्मक (इमोशन) माना है।

मगना के ममा तना में डा० व० ना० वाच्य ने रम गिद्धात के स्थायीभाव और मानमात्रय की स्थिरवृत्ति (सटिमट) में साम्य-स्थापन के लिए अनेक मुक्ति प्रमाणा का आश्रय लिया है। इनके अभिमत का प्रत्याख्यान ही एक प्रकार से अय ममागता ने विन्तार ग किया है। श्री० ल० व० वल्लभ ने 'मकडूगल' के

१ सौन्दर्याचें व्याकरण प० १११२०

मानसंगान्त्र का आधार लेकर स्थायीभाव और 'सेटिमेंट' के साम्यप्रदान का प्रत्या-  
 ख्यान किया है तो प्रा० रा० श्री० जोग ने मानसंगान्त्र के 'सेटिमेंट' और भारतीय  
 रस-स्वरूप की भिन्नता को ध्यान में रखकर दोना का साम्य-स्थापन जमगत माना  
 है। श्री० दि० के० वेङ्कर ने तो भगवद्भक्ति प्रतिपादित भावस्वरूप में मनोवृत्ति या  
 'भावनारूप' की स्थिति का ही प्रतिषेध किया है अतः इनके मत में स्थायीभावा का  
 'सेटिमेंट' मानन का प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु डा० रा० ग० वाळिमने भगवद्भक्ति  
 का आधार लेकर ही स्थायीभावा का भावना या 'इमान' रूप का सिद्ध कर  
 दिया है किन्तु स्थायीभावा को सेटिमेंट मानना इह भी उपयुक्त प्रतीत नहीं हुआ  
 है। डा० सुरेन्द्र वार्गलने भी स्थायीभाव में भावनात्मक तब का प्रतिषेध नहीं  
 करते। इहान स्थायी वा अथ स्थिर' मान कर कविमनस्य तथा महद्दयस्य  
 परिपुष्ट भावनाओं को स्थायीभाव माना है।  
 उपयुक्त हिन्दी-मराठी के समीक्षा की मायताओं व तुलनात्मक अध्ययन  
 से स्थायीभाव और सेटिमेंट तथा रस और सेटिमेंट में पारस्परिक भिन्नता का  
 स्पष्टीकरण करने के लिए संक्षेप में निम्न तथ्य प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

- स्थायीभाव और सेटिमेंट में अंतर
- 1 स्थायीभाव भावना रूप होते हैं अथवा अभिनवगुप्तादि के अनुसार जन्मजात-  
 भावना रूप भी हो सकते हैं, परन्तु सेटिमेंट अनिवायन अनुभव-मपादित  
 (Acquired) होते हैं।
  - 2 एक भाव की बार-बार आवृत्ति में सेटिमेंट बन जाता है जन्म प्राप भाव  
 की मनन जावृत्ति से 'बैर' सेटिमेंट परन्तु रति आदि स्थायीभावा की परि-  
 पुष्टि के लिए मन्त्रियों की ही आनति होती रहती है। मन्त्रियों का मन  
 ही बार आवृत्त होत रह व स्थायीभाव नहीं बन सकते। 'इसके विपरीत  
 अपरिपुष्ट स्थायी मन्त्रियों भी बन सकते हैं।
  - 3 सेटिमेंट में विविध विषयनिष्ठ होते हैं परन्तु स्थायीभाव के लिए यह अनि-  
 वाय नहीं है, सद्दय के या विनी भी व्यक्त के भय जादि स्थायीभावा  
 में रहने में ही विनी निम्न विविध विषय की स्थिति अनिवाय नहीं है।

1 स्थायित्व स्थायित्वेव प्रतिनियत न व्यभिचारियु। व्यभिचारित्व व्यभि-  
 चारित्वेव, नेतरयो। तत्र स्थायिभावानामुभयोर्गति। न व्यभिचारिणाम्।  
 ते नित्य व्यभिचारिण एव न जातु कदापि स्थायिन प्रवन्त्यन्ते। व्यभि-  
 चित्वेव, १७०७१



- ४ स्थायीभाव समग्र रूप से आम्वाद्य होते हैं, परन्तु सेंटिमेण्ट की सहचर भावनाओं का ही आस्वात्न हो सकता है ।<sup>१</sup>
- ५ 'सेंटिमेण्ट' मंदव विचारमूलक होते हैं परन्तु स्थायीभाव (गम का छोड़ कर) विचारमूलक नहीं—प्रवृत्तिमूलक ही है ।

### रस और सेंटिमेण्ट में भिन्नता

- १ गम का परपरागत स्वरूप आनन्दमय है, परन्तु 'सेंटिमेण्ट' अनिवायन आनन्द-स्वरूप नहीं है ।
- २ रस समग्र रूप से आस्वाद्य है सेंटिमेण्ट की सहचर भावनाओं का ही आम्वात्न हो सकता है ।
- ३ रस का मर्यादा सुनिश्चित-सी है परन्तु सेंटिमेण्ट का सुनिश्चित गणना कठिन है ।
- ४ मद्दय में रसानुभूति के लिए भाव या स्थायीभाव की स्थिति अनिवाय है, परन्तु सेंटिमेण्ट के अभाव में भी रसानुभूति संभव है ।

पश्चात्त्य मानसशास्त्र के सिद्धान्तों तथा भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों का समीक्षण किया गया तो तब ही उपयुक्त हो सकता है । स्थायीभाव और सेंटिमेण्ट में भिन्नता निम्न बिन्दुओं के लिए स्पष्टीकरण ही नहीं अपितु 'ही-वही' अथ परिवर्तन भी अनिवाय आ जाता है । प्राचीन काव्य सिद्धान्तों का आधुनिक मनाविज्ञान के प्रकाश में पुनर्गमन तभी उपयुक्त हो सकता है जब कि प्राचीन और अर्वाचीन मायनाओं में जहाँ-तहाँ साम्य नहीं वहाँ उमरी स्पष्ट स्वीकृति ही न दी जाय अपितु दाग के सूक्ष्म अंतर का यथावत निरूपण भी किया जाय । जयवा काव्य-सिद्धान्तों के निम्न मूल्यों का वास्तविक महत्वमापन तथा स्वरूप निर्धारण में प्राचीन सिद्धान्तों के प्रति अतिगिबो माह या द्वेष अथवा अर्वाचीन मता के प्रति विगिष्ट आग्रह या निरस्तर बाधक बन कर उपस्थित होंगे ।

उपर्युक्त तुलनात्मक विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि मराठी और हिन्दी में अधिकांश विद्वानों को मरहटताहिन्दीशास्त्र के स्थायीभाव तथा मानसशास्त्र के 'सेंटिमेण्ट' में एकांत साम्य अमग्न प्रतीत होता है । वस्तु स्थिति भी यही है । स्थायीभाव और 'सेंटिमेण्ट' की भाँति स्थायीभाव और मानसशास्त्र के 'इन्सिक्लूट' में परस्पर साम्य स्थापित करने का हिन्दी और मराठी के

१ 'स्थायीभावनास्वाद्यपत्ति सुमनस प्रेक्षा'—भारत नाट्यशास्त्र ६।३१ ।

प्रतिपक्ष आलोचका ने प्रयत्न किया है। स्थायीभाव के स्वरूप निर्धारण में प्रस्तुत साम्य-स्थापन का अययन भी निरूपयोगी न होगा।

स्थायी भाव और सहजप्रवृत्तियाँ (इंस्टिक्ट्स)

मानसशास्त्रज्ञों के मतानुसार सहज प्रवृत्ति (इंस्टिक्ट) प्रकृति प्रदत्त शक्ति है, जो कि मानसिक मस्कारा के रूप में प्राणिमात्र के मन में स्थित रहती है। इसी सहजप्रवृत्तियों के कारण प्राणी विशेष प्रकार के संवेग (इम्पान्स्) में प्रवृत्त होता है। सहजप्रवृत्तियों और तज्जनित संवेगों का मानसशास्त्र में मेकडूगल महादय ने विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। इनके मत में मूल चोदह सहजप्रवृत्तियाँ (इंस्टिक्ट्स) और इनसे सम्बद्ध अनेक संवेग हैं। इन चोदह सहजप्रवृत्तियों और उनमें सम्बद्ध संवेगों के स्वरूप की ओर ध्यान देने से साहित्यशास्त्र के मूल स्थायीभावा से उनके साम्य का आभास होने लगता है। हिंदी में डा० नगेन्द्र तथा डा० गुलामराय ने मानसशास्त्र की सहजप्रवृत्तियों एवं तत्संबद्ध संवेगों से भारतीय स्थायीभावा के साम्य का विस्तार से निरूपण किया है।

डा० नगेन्द्र ने मेकडूगल निरूपित चोदह सहजप्रवृत्तियों में सम्बद्ध संवेगों

सहजप्रवृत्ति (Instinct)	सहज प्रवृत्तिगत भाव
१ भोजनोपाजन (Food Seeking)	क्षुधा
२ अपवर्षण (Repulsion)	घणा
३ वाम (pairing)	रति
४ भय (Flight)	भय
५ जिज्ञासा (Curiosity)	ओत्सुक्य
६ सामाजिकता (Social Instinct)	मिलनेच्छा
७ मान भावना (Parental Instinct)	घासत्व
८ आत्म प्रतिष्ठा (Assertion)	गव
९ अधीनता (Sumi soim)	दय
१० श्रेय (Pugnacity)	श्रेय
११ आनंदाप्यना (Appal)	दुःखव्यवस्था
१२ निर्माण (Construction)	सज्जनोपाह
१३ परिपह (Hoarding)	अधिकार भावना
१४ हास्य (Laughter)	हास

स स्थायीभावा का सम्बन्ध दिग्ग कर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि रम निदान क स्थायीभावा का वर्गीकरण सबथा जनगल कपाल-कल्पित' या जमनावतानि नहा ह। इहाने स्थायीभावा तथा सहजप्रवृत्तिया के पारस्परिक साम्य-वपम्य का प्रतिपादन कम प्रकार स प्रस्तुत किया है

उपपन्न चोह प्रवृत्ति मूलक मनाविकारो म भा क्षुवा सबथा शारीरिक है जतएव काय म उमके गिणप उपयाग का आगा करना व्यथ है। इसक अनिश्चित गप तरह भा जाप दमिये अति-याप्ति और अ-याप्ति से मुक्त नहा है। व स्पष्टत एक दूमर का मीमा रखा का जतिनमण कर जात है। उदाहरण क लिए मजनात्माह और अधिकार भावना जहकार की परिधि म ही जा जात है। कापण्य और कातरला भा एक दूमर स बहुत भिन्न नही हैं। वास्तव में वे एक हा प्रवृत्ति का आ अभिव्यक्तिया है। इम प्रकार पाश्चात्य मनाविज्ञान क अनगार भा प्रवृत्तिमूलक मनाविकार माधारणत दस ही हुए। रति, हास, नाथ, नय घुणा (जुगुप्सा), औत्सुक्य वात्सल्य अहकार कापण्य, सहानुभूति (मगेच्छा) इनम पन्च गत ता मसृष्ट स्थायीभावा से प्राय अभिन्न ही ह। जहकार और उमाह म भा वाद विपय जतर नहा है। कापण्य का भा कुछ आचार्यों न स्थायीभावा माना ह, परन्तु वास्तव म सबतत्र मन यही रहा है कि भाव स अधिन उमका स्मिति नहा हाता। यही वात मगेच्छा क लिए और भी निश्चय क साथ कहा जा सकती है। अब मसृष्ट साहित्यशास्त्र का एक स्थायीभाव रट जाना है—'गात'। क्या कापण्य और सहानुभूति दाना शाक (करुणा) क तत्व नहा मान जा सरत ? १

इमसे स्पष्ट है कि डा० नगद्र स्थायीभावा तथा सहज प्रवृत्ति मूलक मनो विकारा म सम्बन्ध-स्थापन असगत नही मानन। इही क समान डा० गुलाबराय न भा सहजप्रवृत्तिया तथा स्थायीभावा का परस्पर अतर्भाव दिखाया है।<sup>२</sup> इम अतर्भाव म डा० नगेद्र तथा डा० गुलाबराय न परंपरागत नी रसा म स 'गात' का पथक कर लिया है और उनम 'वात्सल्य' को अतर्भूत कर लिया है। डा० नगद्र न सातरस क स्थायी भाव-निर्वेद-का मजदूगल निरूपित किसी सहज प्रवृत्ति म जतभाव नहा किया है। डा० गुलाबराय का 'गात' रस क विषय म अभिमत यह ह कि 'गातरस म कोई प्रवृत्ति नही होनी यदि हो सकती है तो अर्थातना स्वीकृति (मयमिमान) की प्रवृत्ति। 'गात' इमीलिए 'गात' को नाट्य

१ रीतिकार्य की भूमिका, पृ० ८०

२ सिद्धांत और अध्ययन, पृ० १८६ ८७

रमा मे नहीं माना है और वात्मत्य का स्वतंत्र रम माना है।<sup>१</sup> इस प्रकार हिंदी में परंपरागत दम स्थायी भावा मे तथा महजप्रवृत्तिया में साम्य प्रदर्शित करके स्थायी भावा की मनाशानिवृत्ता सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है।

स्थायीभाव और सहजप्रवृत्ति (इन्स्टिक्ट) के समीकरण के औचित्य-अनीचित्य अथवा गुण-द्रापा के विवेचन मे पूर्व आधुनिक मराठी काव्य शास्त्र के प्रमुख लेखक प्रा० जाग की स्थायी और मूल प्रवृत्ति मन्त्र की मायता का उल्लेख भी अनुपयोगी न होगा। हिन्दी-काव्यशास्त्र के लेखक स पद्याप्त समय पूर्व ही मराठी लेखक न साहित्यशास्त्र के सिद्धान्ता का पाश्चात्य काव्यशास्त्र और मानसशास्त्र के प्रकाश में अध्ययन आरम्भ कर दिया था। श्री जाग ने अभिनव काव्य प्रकाश के प्रथम संस्करण (१९३०) में पाश्चात्य मानसशास्त्रन गैड की मायता का आधार पर स्थायी भाव और रमा के विवेचन का प्रथम प्रयत्न किया था। इंग्लैंड निरूपित मानवी भावनाओं के श्राध, भय, जानद और शोक चार प्रमुख मूलभूत स्वतंत्र तथा जुगुप्सा विन्मय आदि दो मुख्य-रूप मया के आधार पर स्थायी भावा तथा रमा का प्रतिष्ठापित किया था। स्थायी भावा की मन्त्रता आठ थी परन्तु गैड की प्रमुख मानवी भावनाओं के मय की परिधि सामित थी। इसमें 'रति' जन्म प्रमुख स्थायी भाव का अंतर्भाव नहीं हो पाता था, परन्तु प्रा० जाग ने 'रति' की मूलभूतता और व्यापकता का भी प्रतिपक्ष किया था।<sup>२</sup> परन्तु काव्यतर में श्री जोग का गड के मानवी भावना-मया के आधार पर स्थायी भावा का साम्य प्रदर्शन अनुपयुक्त लगा अत उन्हाने अभिनव काव्य प्रकाश, के द्वितीय संस्करण में 'रम के विषय में स्पष्ट लिखा—'उत्कट चित्तवृत्ति का निमाण जिन जिन भावनाओं से होता है, व भावनाएँ मूलभूत हो अथवा न हा, रम वन मरती हैं।'<sup>३</sup>

डा० वाटव के रगविमंग प्रकाशित होने के पश्चात् मराठी में स्थायी और 'सिटीमेंट' के समीकरण पर अनेक आलोचनात्मक रत्न प्रकाशित हुए। श्री जोग ने 'अभिनव काव्य प्रकाश' के तृतीय संस्करण में परिशिष्ट जाडकर 'स्थायी और 'सिटीमेंट' के अंतर का स्पष्टीकरण किया है और स्थायी भाव तथा 'सहजप्रवृत्ति' (Instinct) के साम्य का रग प्रकार में गत टहराया है 'एंगी स्थिति में यही कहना उपयुक्त लगता है कि स्थायी भावा

१ सिद्धान्त और अध्ययन, पृ० १८६-८७।

२ अभिनव काव्य प्रकाश प्र० संस्करण पृ० ७५ (१९३०)

३ अभिनव काव्य प्रकाश, द्वितीय संस्करण पृ० ११४ (१९४६)

का सहजात वृत्तियाँ (इन्स्टिक्टस) से और रसों का 'इमाशंस' से अधिक निवृत्त सम्बन्ध है। इन विषय में अपवाद हो सकते हैं परन्तु स्थूल रूप में यही समीकरण उपयुक्त लगता है।<sup>१</sup> जिस प्रकार स्थायीभाव और सेटिमेंट का नितांत साम्य प्रतिपादन अनुपयुक्त है, उसी प्रकार स्थायीभावा का सहजप्रवृत्तियाँ में समीकरण भी विरोध महत्वपूर्ण नहीं है। वस्तुतः सस्कृत-आचार्यों में ही स्थायी भाव का स्वरूप के विषय में मत भेद है। भरतमुनि स्थायीभाव को 'स्वामा-सेवन' या राजा-अनुचर का उदाहरण देकर समथ या गतिशाली 'भाव' के रूप में मान्यता दत्त है<sup>२</sup> तथा अभिनव गुप्त 'वासना' 'भविद्' या जन्मजात मूलभाव के रूप में उक्त स्वीकार करते हैं।<sup>३</sup> आचार्य विश्वनाथ ने इस विरोधी या अविरोधी भावों से न दबने वाला तथा आस्वादाकुर या 'आनदाकुर' कहा है,<sup>४</sup> तो जगन्नाथ ने चित्त में चिरकाल तक रहने वाला तथा व्यभिचारी भावों को अपनी आर जाकर्षित करने में समथ एवं रसत्व को प्राप्त होने वाले भाव को स्थायी कहा है।<sup>५</sup> इसके अतिरिक्त जगन्नाथ ने संगीत रत्नाकर के रचयिता साङ्गदेव का अभिमत भी उद्धृत किया है जिसके अनुसार स्थायी भावा के जन्मजात या सस्कार रूप का भा प्रतिपद्य मिलता है— चिर काल तक अथवा गतिशाली विभावा में उद्दीप्त रत्यादि भाव स्थायी भाव होते हैं परन्तु वे ही भाव यदि स्वयं अथवा निबल विभावादियाँ में उद्दीप्त हों तो केवल संचारी भाव ही हों।<sup>६</sup>

(१) अतः उपयुक्त मान्यताओं से स्पष्ट है कि सभी आचार्य स्थायी भाव को जन्मजात सस्कार रूप में नहीं मानते विभावादि से परिपुष्ट होने पर ही उसका स्थायी रूप बनता है दूसरी ओर सहजप्रवृत्ति में जन्मजात सस्कारिता अनिवार्य है वह स्वयं परिपुष्ट नहीं होती बल्कि स्वयं को जन्म देती है।

(२) स्थायी भावा की सन्ध्या आठ-नौ रही है जब कि सहज प्रवृत्तियाँ १४ मानी गई हैं इनमें सग्रह (Hoarding Instinct) रचना (Creative-

१ अभिनव काव्य प्रकाश तताय सस्करण प० १२३ : (१९५१)

२ नाट्यशास्त्र ७७ के उपरान्त का गद्य।

३ अ० भारती पृ० २८३ द्वि० स० (१९५६)

४ सा० द्यण ३।१७४।

५ रत्नगोपट पृ० ३१।

६ संगीतरत्नाकर ७ १५३३

Instinct) तथा मध्यान्वेषण ( Food seeking )} को परंपरागत स्थायी भावा के अन्तगत रखना कठिन है।

(३) शोक सस्कृत-नाव्यशास्त्र के अनुसार स्थायी भाव है, मानसशास्त्र में 'शोक' को महजप्रवृत्ति (Instinct) के रूप में मायता नहीं दी गई है।

(४) अनेक सचारी भावा की गणना सहजप्रवृत्तिया के अन्तगत की जा सकती है। उदाहरणार्थ, गव सचारी का अहभाव या आत्मप्रकाशन रूप (Assertion) सहजप्रवृत्ति में तथा औत्सुक्य सचारी का उत्सुकता (Curiosity) में। फिर केवल ८-९ स्थायी भावा को ही सहजप्रवृत्तियों (Instincts) में निर्धारित करने की कौनसी निर्दोष कसौटी है ?

इस विषय में डा० चार्ल्स के अभिमत को उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा—“जिस प्रकार संगीत की उत्पत्ति लैंगिक भावना से मानी जाती है, परन्तु लैंगिक भावना और संगीत दोनों एक नहीं हैं, उसी प्रकार पुष्टभाव (स्थायी) और मूल प्रेरणा दोनों एक ही नहीं हैं। इमोशनस वस्तु की सहायता से पुष्ट होते हैं परन्तु सहजप्रवृत्तिया (Instincts) को इस प्रकार की सहायता की आवश्यकता नहीं होती। सहजप्रवृत्तियाँ 'अनवान्दास' (अचेतन) होती हैं। विनाश मूलप्रेरणा और स्थायीभाव दोनों को एक ही मान लिया जाय तो 'वत्सल' और शृंगार में अंतर करना ही कठिन होगा। अतः

मनःशुद्धि निरूपित मूलप्रेरणा की सूची का आधार लेकर तदनुसार आठ या नौ रसा का निर्माण सिद्ध करना उपयुक्त नहीं लगता।”

इससे स्पष्ट है कि पादचाल्य मानसशास्त्र की सहजप्रवृत्तिया से स्थायी भावों के साम्य निर्धारण का प्रश्न विवादग्रस्त है। कतिपय स्थायीभाव अनायास ही मानसशास्त्र की सहजप्रवृत्तिया से मेल खा जाते हैं, इस कारण समस्त स्थायीभावों या उनसे साम्य प्रतिपादन करना जहाँ एक ओर अव्याप्ति दोष है वहाँ दूसरी ओर स्थायी इतर अनेक सचारियों का सहजप्रवृत्ति में अन्तर्भाव सम्भव होने से प्रस्तुत समीकरण अनिव्याप्ति दोष से भी असम्भूत नहीं है। अतः स्थायी और 'मेंटिमेंट' की भ्रांति स्थायी और सहज प्रवृत्तिया का समीकरण भी नितात निर्दोष नहीं है।

गाहिल्यशास्त्र के स्थायी भावा या मानसशास्त्रीय 'मेंटिमेंट' तथा 'इन्स्टि-कटम' में तुलना करने के उपरान्त एक निष्पन्न अवश्य निबलना है कि भारतीय

आचार्यों ने जिा स्थायी भावा की परिकल्पना की है, उनका आधार मानवी मन है। दूसरा आर मानसशास्त्र का आधार भी मानवीमन है और वह उसके रहस्या का उदघाटन करता है। यद्यपि दाना का मूल आधार एव ही है, तथापि मनोविज्ञान में मनोवृत्तिमा का वर्गीकरण और उनका स्वरूप निर्धारण एकातत भावना और उनकी स्थूल उपयोगिता क आधार पर नहीं होता, अपितु मानसशास्त्र मन का अध्ययन अन्तःक्षण (Introspection), निरीक्षण (Observation), प्रयोग (Experiment), तुलना (Comparison), और चित्तविश्लेषण (Psycho analysis)के आधार पर करता है। परन्तु काव्यशास्त्र क सिद्धान्त का मूल आधार मानसशास्त्र का व्यापक मन नहीं है अपितु काव्योपयुक्त भावनाओं से परिपूर्ण मन है। अतः काव्यशास्त्र भावनाओं का वर्गीकरण जिम तत्त्व के आधार पर करता है, मानसशास्त्र एकातत उसी तत्त्व का नहीं अपनाता। काव्य में अभिव्यक्त व्यापक, तीव्र और प्रबल भावनाओं को पहले-पहल स्थायी' की सना दी गई होगी। मभवतः भरतमुनि से पूव तथा उनके सम-सामयिक नाटक-साहित्य में मुख्यतः रत्यादि आठ स्थायी भावा का प्रमुख वर्णन उपलब्ध हाता हो। भरतमुनि न तो इन आठ स्थायी भावों में भी चार-रति, श्लोघ उत्साह और जुगुप्सा का प्रमुख और शेष चार-हास, शोक, विस्मय और भयानक का क्रम तज्जय हान से गौण या अप्रमुख रूप में वर्णन किया है।<sup>१</sup> स्थायी भावों के नामकरण अथवा वर्गीकरण की क्या कसौटी है? अथवा उनका मूल आधार क्या है? इन विषय में भरतमुनि 'आप्तवचन' को ही प्रमाण मान कर चले हैं।<sup>२</sup>

आठ रसा में चार को प्रमुख और शेष चार को 'उपरस मानने से अथवा सज्जय मानने में यही ध्वनि हाता है कि भावनाओं की उत्कटता अथवा उनकी रगमचगत परिपुष्टि ही स्थायी भाव क वर्गीकरण क मूल में निहित है। कालान्तर में अभिनवगुप्तानि आचार्यों ने उह जमजात या वासनारूप भी मान लिया है। अभिनव परवर्ती सन्वृत क आचार्यों न स्थायीभावों के स्थायित्व क अर्थ अनेक

१ तेषामपत्ति हेतवश्चत्वारो रसाः । तद्यथा शृंगारो रौद्रो वीरो वीभंस इति । ना० शा० ६।३८ ।

२ यथा च गोपकलाचारोत्पन्नायाप्तोपदेशसिद्धानि पुमां नामानि तद्यवर्षा रमानो भावानां च नाट्याश्रितानां धार्यानामाचारोत्पन्नायाप्तोपदेश सिद्धानि नामानि भवन्ति । ६।४५ ना० शा०

कारण भी डूढ़ निवारण । किमी ने इमे प्रधान मनोविकार माना, जो मजातीय या विजातीय भावा मे निराहित नहीं होता तो किमी किमीने चिरकाल स्यायित्व, आप्रवृत्तस्ययित्व या अविच्छिन्नप्रवहमानता के कारण इहें स्यायी कहा है ।<sup>१</sup> परन्तु हिन्दी तथा मराठी के आधुनिक वाक्यांश के विचारका ने स्यायी भावों का मानमांश के 'सेंटिमेंट' तथा 'इम्प्रेटम' से सम्बद्ध करके इनकी मनोवैज्ञानिकता की गोज का प्रयत्न किया है । प्रन्तुत प्रयत्न मवचा निर्दोष न होने पर भी इम की मवने वडी उपयोगिता यही है कि यह हमारे दृष्टिकाण को व्यापक और चितन प्रणाली का वैज्ञानिक बनाता है ।

वाक्यांश और मानमांश की आधारभूत मिलन भूमि एक ही है— और वह है भावनाशा (Emotions) की । मानमांश भावनाओं का वर्गीकरण प्राथमिक (Primary) समिश्र (Blended) और माधित (Derived) रूप म करे अथवा वाक्यांश स्यायी और मचारियों के बग बनाये परन्तु दोनों में समान रूप मे उपलब्ध वस्तु— भावना ही है । मानमांश अपनी विविष्ट पद्धति मे भावनाशा का वर्गीकरण करता है और वाक्यांश की भी अपनी निराली पद्धति है । दाना के वर्गीकरण मे नितान्त स्वप साम्य है, पूण साम्य नहीं । अत वाक्यांश के स्यायी भावा का सम्बन्ध निरापद रूप मे मानन शास्त्र व किमी तत्व मे स्यापित किया जा सकता है तो वह भावना (Emotion) ही है ।

### विभाव का स्वरूप

भरतमुनि ने अपन रम मूत्र म विभाव को प्रथम स्थान दिया है और कारण निमित्त तथा हतु इन तीन पर्यायवाची शब्दा मे विभाव का जय स्पष्ट किया है ।<sup>२</sup> जिनके द्वारा वाचिक आंगिक और नाचिक अभिनया की प्रतीति करार जाती है वे आधारभूत सम्पूर्ण उपादान विभाव हैं ।<sup>३</sup> जयभरत ने कहा है की नामक प्रमादात्मक भाव को ऋतु माना वस्तुपेन आभंग्ग इत्यादि विभावान उत्पन्न किया जाता है ।<sup>४</sup> विभाव की प्रन्तुत मगिन व्याख्या

१ विस्तार के लिए दे० ससृत्त मे स्यायीभाव का स्वरूप ।  
 २ विभावो पित्तानाय । विभाव कारण निमित्त हेतुरिति पर्याया ।  
 दे० नाट्यशास्त्र ७३ के बाद का विवेचन  
 ३ नाट्यशास्त्र—७४  
 ४ यरी ७-६, ७-१३



स भरतमुनि का मूलभूत आशय इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है, वाचिक, आंगिक और सात्विक अभिनयों की प्रताति कराने का आधारभूत साधन विभाव है रति आदि स्थायीभावा के उत्पादक कारण ऋतु माता आभूषण आदि उपकरण भी विभाव हैं अर्थात् अभिनयता पात्रों और स्थायी भावा की साकारता प्रदान करने में सहायक भूमि उपादान विभाव कहलाते हैं ।

इस प्रकार भरतमुनि के मतानुसार रस निष्पत्ति का उत्पादक कारण विभाव है । भरतोत्तर युग में रस स्वरूप के विषय में तीन भिन्न भिन्न मत उपलब्ध हो गए हैं—वस्तुवादी, भाववादी और आनन्दवादी ।<sup>१</sup> जहाँ तक प्रथम प्रकार का वस्तुवादी रस है उसकी निष्पत्ति रगमच पर ही होती है, वह सहृदय सापेक्ष नहीं है अतः उसमें सहृदयगत स्थायी भाव की उद्वुद्धि, परिपुष्टि या चवणा का प्रश्न नहीं उठता । जब दोनों रस-स्वरूपा में सहृदयगत स्थायी भाव की परिपुष्टि का विवेचन किया गया है । धनञ्जय ने विभाव के सामान्यतः दो ही वर्ग बनाये हैं—आलवन और उद्दीपन ।<sup>२</sup> आलवन के अंतर्गत कायगत नायक-नायिका का अंतर्भाव किया गया है और उद्दीपन में आलवन-बाह्य उपकरणों का । आचार्य अभिनवगुप्त के समस्त भरतमुनि के समान एकात्मत रगमच का रूप ही उपस्थित नहीं था । उन्होंने वाच्य-स्वरूप का भी दृष्टिगत रख कर रस सिद्धांत के विभिन्न अंगों का व्याख्या की है । अतः इन्होंने रस के मूल में निहित स्थायीभाव की स्थिति विनाशित सहृदयगत ही स्वीकार की है<sup>३</sup> और रस निष्पत्ति में सहृदयगत स्थायीभाव की अभिव्यक्ति पर बल दिया है । कायगत पात्रों में रस निष्पत्ति का वे मायता नहीं देते । इन्होंने वाच्यगत विभाव के आलवन और उद्दीपन दो ही वर्ग स्वीकार किये हैं और सहृदयगत स्थायी भाव का 'उद्भव-हेतु' या विषय' इस रूप में ही विभाव' शब्द का आशय ग्रहण किया है । विभाव को सहृदयगत स्थायीभाव की उद्वुद्धि का कारण मानते हुए इसके आलवन और उद्दीपन इन दो वर्गों को ही अधिकांश आचार्यों ने मायता दी है । कतिपय आचार्यों ने आलवन विभाव के भी दो भेद—विषयालवन और आश्रयालवन—किये हैं । जिसको उद्दिष्ट कर रत्यादि भाव प्रवर्तित होते हैं वह विषयालवन कहलाता है और जो रत्यादि स्थायी भाव का आधार है, वह आश्रयालवन कहलाता

१ दे० रस स्वरूप प्रकरण ।

२ रसनिष्पत्ति, ४।२

३ अभिनव भारती, पृ० २८३ ।

है।<sup>१</sup> इस प्रकार वाच्यगत 'विभाव' सामान्यतः तीन वर्गों में विभक्त हो गया—आश्रयालवन, विषयालवन और उद्दीपन।<sup>२</sup>

वाच्यगत विभाव के प्रस्तुत तीन वर्गों की पृथक्-पृथक् स्थिति स्वीकार करने से महदयगत रस निष्पत्ति में कुछ उल्लंघनों पैदा हो जाती हैं। क्याकि आनन्दवादी आचार्यों के अनुसार रस तथा स्थायी भाव की स्थिति आश्रय में होनी है। वाच्यगत आश्रय में जिन ग्यायी की स्थिति है, उसी में महदय का सादात्म्य होने पर तदनु रूप ही सहृदय में स्थायी भाव की अभिव्यक्ति में रस निष्पत्ति होगी। एसी स्थिति में यहाँ दो महत्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित हान हैं—

१ क्या सहृदयगत रस निष्पत्ति के लिए वाच्यगत 'विभाव' के आश्रयालवन, विषयालवन तथा उद्दीपन तीन वर्गों की पृथक्-पृथक् व्यवस्था की आवश्यकता है ?

२ जहाँ वाम में आश्रयालवन का वणन न हो, वहाँ महदय के स्थायीभाव की अभिव्यक्ति किस आधार पर होगी ? उदाहरणार्थ बीभत्स तथा हास्य में घृणात्पादक बन्धुआ का तथा हास्यात्पादक विषयालवन का रूप वणन ही पर्याप्त है। वहाँ किसी अन्य आश्रयकी आवश्यकता ही नहीं, जिसमें प्रथम जुगुप्सा या हास्य स्थायीभाव की स्थिति दिखाई जाय और तदनु रूप सहृदय में भी उस स्थायी भाव की उदगुद्धि या अभिव्यक्ति सिद्ध की जाय ?

भरतमुनि के सामने तो विभाव की आश्रयालवन और विषयालवन की पृथक्-पृथक् बन्धनाएँ नहीं थीं। उनके अनुसार तो विभाव का अर्थ ही रस का कारण है जिसमें समस्त पात्र और उनके भावा का अभिव्यक्त करने में महामत्त सम्पूर्ण प्राकृतिक और वैषम्यपूर्ण उपकरण अंतर्भूत हैं।

रस को सहृदयगत सिद्ध करने वाले आचार्यों ने लौकिक और अलौकिक रस की बन्धनाएँ भी की हैं। वाच्यगत पात्रों में आश्रय और आलवन की जो स्थिति है अथवा इनमें जो रस निष्पत्ति है, वह लौकिक है। वाच्यगत नायक-नायिका का शू गार लौकिक रस हैं, उनकी उत्पत्ति के लिए उद्दीपन, विभाव, अनुभाव आदि कारण होते हैं, परन्तु रसमत्त पर उसका प्रयोग देखने में अथवा वाच्य में वणन करने में महदय के मन में जो साधारणीकृत अथवा ध्यक्ति

१ आर्यां पि द्विधा विद्ययाश्रयभेदात् । यमुद्धिन्य रत्यादि प्रवर्तने सोऽग्य विषय । आश्रयस्तु तदाधार । विद्याभूषण साहित्य बीमुदो, ४ पृ० २९ । रस विमर्ग, पृ० १३२ से ।

२ वे० सरस्वती बन्धनभरण ( भोज ) ५।३५-३८ ।

निरपेक्ष केवल आनन्द स्वरूप अंतिम परिपाक निर्माण होता है, उस अलौकिक रस कहते हैं।<sup>१</sup> जत अधिकांश जाचार्यों ने विभावादि सामग्री लौकिक रस अर्थात् काव्यगत स्वीकार की है और स्थायीभाव को मात्र सहृदयगत माना है।<sup>२</sup> इस स्थिति में काव्यगत विभाव की स्थिति लौकिक ही मानी जायगी। इसमें अतिरिक्त काव्यगत विभाव के आश्रयालवन और विषयालवन दोनों भेद महत्त्व के अलौकिक रस का निष्पत्ति में सामान्य आलम्बन रूप ही रहेंगे। इस प्रकार प्रथम प्रश्न का उत्तर महर्षि आचार्यों की भावनाओं के अनुसार ही यह बनेगा कि विभाव के आश्रयालवन विषयालवन दो पृथक् पृथक् वग बताने पर भी उनका सामान्य स्वरूप सहृदय के लिए आलम्बनात्मक ही रहेगा।

दूसरे प्रश्न का उत्तर भी 'लौकिक' और 'अलौकिक' रस-स्वरूप के आधार पर ही दिया जा सकता है किन्तु आचार्य जगन्नाथ ने इसका उत्तर अपने निम्न विचार में प्रस्तुत किया है। इनके मत में ऐसे स्थला में किसी 'दशक पुरुष' (द्वेषपुरुष विशेष) के आश्रयत्व की कल्पना कर लेना चाहिए।<sup>३</sup> वस्तुतः प्रस्तुत उत्तर विषय समाधान कारक नहीं है। क्योंकि सहृदय को अपने से भिन्न आश्रय का कल्पना करने का आवश्यकता ही क्या है? उसे हास्य या घाभत्व के आलवन का रखने ही बिना काव्यगत आश्रय के या 'दशक पुरुष विशेष' की कल्पना के समानुभूति ही सकती है। यदि सहृदय की दृष्टि में विचार किया जाय तो काव्यगत आश्रय और काव्यगत आलवन दोनों ही सहृदय के लिए आलवनात्मक रूप ही हैं।

परन्तु जब काव्यगत पात्रों के आश्रय और आलवन दो वग बनावे गाने हैं तब सर्वत्र आश्रय में सहृदय के तात्कालिक स्थिति का प्रश्न जटिल हो जाता है। क्योंकि काव्य में भवतः स्थायीभाव के या रस के आश्रय का वृत्त निवृत्त नष्ट होना जैसे घाभत्व और हास्य में और अनेक बार काव्यगत आश्रय से सहृदय का तात्कालिक भाव भी कठिन हो जाता है, जस, सल्लस्यक के प्रसंग में। अतः आचार्य गुणधर ने और मराठी में डा० वाटवे ने काव्यगत आश्रय और आलवन का स्थिति पर कुछ विस्तार से चिन्तन किया है। उनके अभिमत का निष्पत्ति करने के उपरान्त काव्यगत विभाव के वास्तविक स्वरूप निर्धारण का प्रयत्न किया जाएगा।

१ वि० ३० रसविमर्श पृ० ३०० १

२ वही पृ० ३०१ ।

३ रसगंगाधर, पृ० ५५ ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'विभाव' के आलम्बन तथा आश्रय दो पक्षों का निरूपण किया है। इनमें आलम्बन के अन्तर्गत 'मनुष्य से लेकर वीट, पत्त, वृक्ष, नदी, पर्वत आदि मूर्ति का कोई भी पदार्थ हो सकता है किन्तु 'आश्रय' सहृदय सम्पन्न मनुष्य ही होता है।<sup>१</sup>

आलम्बन के अन्तर्गत शुक्ल जी ने प्रकृति वणन का स्वतंत्र आलम्बन रूप माना है। इनके मन में प्रकृति वणन का सबसे उद्दीपनमात्र मानना उचित नहीं है। काव्यगत 'आश्रय' के विषय में भी शुक्ल जी की स्पष्ट स्थापना है "जो वस्तु मनुष्य के भावा का विषय या आलम्बन होती है उसका शब्द चित्र यदि किसी कवि ने सींच दिया है तो वह एक प्रकार में अपना काम कर चुका। उसके लिए यह अनिवाय नहीं कि आश्रय की भाँति कल्पना करके उस उम्र भाव का अनुभव करता हुआ दिखे। मैं आलम्बन मात्र के विना वणन का श्रावण में रमानुभव (भावानुभव नहीं) उत्पन्न करने में पूर्ण समर्थ मानता हूँ।<sup>२</sup>

शुक्ल जी ने अपनी उपयुक्त स्थापना की परिपुष्टि में अनेक प्रमाण प्रस्तुत किए हैं, जिनमें काव्यगत 'आश्रय' के अभाव में भी सहृदय या रमानुभूति की स्थिति नहीं जा सकती है।

१ नायिका भेद या 'नयनसिद्धि' में सम्बद्ध प्रथा में आश्रय की स्थिति नहीं होती। 'नायिका भेद' में शृंगार रस का आलम्बन मात्र का वणन होता है और नयनसिद्धि के किसी पक्ष में उम्र आलम्बन के भी किसी एक अंग मात्र का।

२ समार की प्रत्यक्ष भाषा में हम प्रकार के काव्य वर्तमान हैं जिनमें भावा का प्रदर्शन करने का पात्र अपना आश्रय की यात्रा नहीं की गई है।

३ प्राकृतिक वणन का रमालम्बक दृष्टांत समर्थ आश्रय भूत पात्र की वहाँ आवश्यकता नहीं होती।

४ श्रोता या पाठक का भी दृश्य होता है—यह दूरग के होने से रोने को दर्शन के लिए नहीं जाता, बल्कि स्वयं ऐसे विषयों का सामन पान के लिए जाता है जो स्वयं उसे हँसाने, रगाने के गुण रखते हैं।

५ राम जानकी के वनगमन प्रसंग में हरिदत्त द्वारा जपना पत्नी गीत्या से कपन माँगने समर्थ दाव करणाद्र हा जान हैं उर विनी आश्रय की आवश्यकता नहीं होती।

शुक्ल जी की भाषणा में रमानुभूति के लिए विभाव का आलम्बन पक्ष का

१ रस मीमांसा, पृ० ११०।

२ रस मीमांसा पृ० १४३-१४४

विषय महत्व है। फलतः पूण रस की निष्पत्ति के लिए 'शुक्ल जी ने 'सामान्य जालवन' की कमीठी का महत्वपूर्ण माना है। कायगत 'जालवन' से काव्यगत आश्रय मजिन भावा की परिपुष्टि हाती है यदि सहृदय म भी काव्यगत जालवन स काव्यगत आश्रय के समान ही भावा की परिपुष्टि हो, तो वहा पूण रस मानना चाहिए

'पूण रस वही मानना पडगा जहा—

(क) आश्रय श्रोता क रति भाव का जालवन होगा और

(ख) जालवन श्रोता के भी उही भावो का जालवन होगा आश्रय के जि भावा का है।<sup>१</sup>

प्रस्तुत पूण रस की कमीठी 'शुक्ल जी के ही मत म सबत्र अनिवायत अति घटित नही होनी। उदाहरणाय शकुत्ला के प्रति दुर्वासा के श्राध म श्रोता या सहृदय भी जाश्रयवत ( दुर्वासा के समान ) क्रोध की अनुभूति नही करेगा। कायगत आश्रय के समान सहृदय को उसी भाव की अनुभूति नही होगी। क्या पूण रस के अभाव म इस प्रकार के प्रसंग काव्य म त्याज्य हैं? शुक्ल जी ने ही उत्तर दिया है इस प्रकार का वणन काय म अनुपादेय नही कहलायेगा, क्याकि कवि का काव्य सदव रस की या पूण रस की कवायद करना नही।"<sup>२</sup> शुक्ल जी की प्रस्तुत भायता दो तथ्या पर विन्तन करने के लिए प्रेरित करती है

१ रस सिद्धान्त ही मूलत इतना अव्यापक है कि उसमे कवि-अभिग्रत सभी प्रकार की भावनाओ का अन्तर्भाव नही हो पाता। विशेषतः वे भाव रसा अनुभूति क अनुपयुक्त हैं जिनम कायगत आश्रय की भावनाओ स सहृदय का सागरम्य नही हो पाता। अथवा

२ भरतमुनि के परवर्ती आचार्यों ने ही व्यापक विभाव तत्त्व की सहृदयगत रस निष्पत्ति का दृष्टि से सक्चित बना दिया है। उन्होने 'विभाव' के जालवन उद्दीपन तथा आश्रय तीन पक्ष बना दिये। पूण रस निष्पत्ति के लिए सहृदय का कायगत आश्रय से सागरम्य अनिवाय ठहराया।

रस सिद्धान्त म अव्यापकता का एक कारण उसके विभिन्न तत्त्वा का अत्यधिक सूक्ष्म वर्गीकरण भी है। यदि 'विभाव का आश्रय मूलत भरतमुनि निरूपित ही स्वानार मिया जाय ता विषय उल्लेखना के लिए अवकाश ही नही होगा। काव्य हो अथवा नाटक हो जो विभिन्न रसा अथवा भावा की पाठको को अनुभूति कराने म समथ तत्व हैं व विभाव हैं, इसम मानव का रूप, उसकी वगाभूपा, प्राकृतिक

१ रस सामांसा पृ० १५०।

२ रससामांसा पृ० १५८।

वातावरण सभी का अंतर्भाव हा जाता है। भरतमुनिने वही भी नाट्यगत या काव्यगत आश्रय की चचा नहीं की है। महृदय की दृष्टि में देखें तो काव्यगत आलवन अथवा काव्यगत आश्रय दोनों ही उसकी विशिष्ट अनुभूति या रस को उद्बुद्ध करने में समथ तत्व हैं, कारण हैं, भरत के शब्दा में 'निमित्त' या 'हेतु' हैं अतः विभाव हैं।

जहाँ काव्यगत आश्रय में उद्बुद्ध भावा से सहृदय का भी पूण तादात्म्य हो जाता है, वहाँ तो परंपरागत विभाववर्गीकरण—आश्रय-आश्रय रूप-निर्दोष है। इनके विपरीत जहाँ काव्यगत आश्रय से तादात्म्य नहीं हो पाता वहाँ सहृदय की दृष्टि में 'विभाव' के आलवन तथा आश्रय दो पण निर्धारित करना अनुपादेय प्रतीत होता है। ऐसी स्थिति में सहृदय के लिए काव्यगत आश्रय तथा काव्यगत आश्रय दोनों ही आलवन स्वरूप ही हैं। गकुत्ला के प्रति दुर्वासा के श्राप प्रमग में सहृदय के सामने दोनों का चरित्र स्पष्ट है महृदय को यदि यहाँ रोद्र रस की अनुभूति नहीं हानी, तदितर किसी भाव की अनुभूति होनी है तो भी गकुत्ला और दुर्वासा दोनों ही पाठक में रोद्र स्तर किसी विशिष्ट अनुभूति को उद्बुद्ध करने के कारण हैं, हेतु हैं अतः विभाव हैं।

अधिक स्पष्ट शब्दा में कहें तो यहाँ काव्यगत आलवन गकुत्ला और काव्यगत आश्रय दुवामा दोनों ही सहृदय के लिए आलवन रूप ही हैं।

मगठी में डा० वाटव न काव्यगत आश्रय-आलवन तथा महृदयगत आश्रय-आश्रय का पृथक्-पृथक् विवेचन करते हैं इस समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया है। इनके मन में काव्यगत आश्रय-आश्रय तथा महृदयगत आश्रय-आश्रय की पृथक्-पृथक् स्थिति स्वीकार करना आवश्यक है। शृंगार रस में इनकी पृथक् स्थिति के निरूपण की आवश्यकता इसलिए प्रतीत नहीं होती कि वहाँ प्रायः काव्यगत आश्रय काव्यगत आश्रय और आम्बादेव महृदय दोनों के लिए एक जैसा ही होता है। परन्तु अन्य रसों में हम प्रकार की स्थिति नहीं रहती। उदाहरणार्थ, आचाय जगन्नाथ ने बौर रस के आश्रय-आश्रय का इस प्रकार से वणन किया है—

राम—ह रावण ! तूने दोन देवताजा को पगयन के लिए वाधित कर अपना पराक्रम व्यक्त किया ह तुघ जमें छुद्र ध्वनि पर मैं वाण बने छाडू ? वट गार ही भरे वाण के वेग को जानने में समथ है जिनने अपने भाँ पर स्थित नेत्र में निरानी हृत् जवाजा से मपूण तमार को अभिभूत कर दिया है। ३

१ रत्नविमला, पृ० ३०५ ।

२ रणे शानान देवान श्यावदन विद्राप्य बदनि

आचार्य जगन्नाथ वं मतानुसार इसमें शिव जालवन विभाव रण-दण उद्घाटन विभाव रावण की जवना अनुभाव तथा गव 'यभिचारा भाव है।<sup>१</sup> परन्तु डा० वाटव वं मतानुसार वार राम की स्व सामर्थ्य प्रदायक उक्ति वं कारण हा पाठना म उमात् शर्याभाव उद्घाटन होता है अत राम का ही जावन क्या न माता गाय शिव के उद्यम से राम की उक्ति म प्रसरता अवश्य आ गई है परन्तु सहृदय वं उमात् का उद्घाटन ता राम की ही उक्ति है। आचार्य जगन्नाथ ने राम का जावन विभाव क रूप म नहीं रखा इसका कारण यह है कि उन्होंने कायगत व्यक्ति वं जावन विभाव तथा सहृदय वं आलवन विभाव की पथक् पथक् स्थिति पर ध्यान नहीं लिया है। शिव की जतुल शक्ति के उल्लेख से राम मज्जो का संचार हुआ है अत राम वं शिव जावन शिव ही है परन्तु सहृदय के लिए ता राम ही आलवन है राम की उक्ति म ही सहृदयस्थ उत्साह उद्बुद्ध हाता है।<sup>२</sup> इसी प्रकार मम्मट वं काव्यप्रवाण म गान्तुत् नाटक क ग्रीवाभगाभिराम०' श्लोक म दुष्यत के वाणा से भयभीत राजर भागता हुआ मग आश्रय तथा दुष्यत का जावन निरूपित किया गया है।<sup>३</sup> डा० वाटव वं मत में वाक्यगत आश्रय-आलवन की दृष्टि म प्रस्ता यवस्था समाधान है परन्तु सहृदय म भयानक रस की निरूपित वं शिव भय म भागता हुआ मग आलवन वनगा न कि राजा दुष्यत।<sup>४</sup> जन डा० वाटव न मान्दियरीमदाकार वं विभाव वर्गीकरण— 'आश्रयालवन विभाव' तथा विषयालवन विभाव—का समर्थन किया है। इस प्रकार 'आश्रयालवन विभाव सहृदय का हागा और विषयालवन विभाव कायगत व्यक्तियों का। पूर्वोक्त वार राम वं उदाहरण म राम उत्साह वृत्ति का आश्रय तथा शिव उसका विषय है अत राम सहृदय का जावन विभाव जोर शिव राम का आलवन विभाव समझा जा सकता है। इसी प्रकार भयानक रस क उदाहरण में मग वं लिए आलवन होगा राजा दुष्यत और सहृदय के लिए होगा भयभीत मग।<sup>५</sup> इस प्रकार डा० वाटव वं मत म रस-स्वरूप के निर्धारण म कायगत व्यक्ति के विभाव और सहृदय के विभाव का पथक्-पथक् उल्लेख इस समस्या का समाधान प्रस्तुत कर सकेगा।

प्रस्तुत आश्रय-आलवन की पथक्-पथक् यवस्था समीचीन प्रतीत होती है।

१ रसगंगाधर पृ० ४८ ४९ ।

२ रसविमर्श, पृ० ३०४

३ वाक्यप्रवाण, ४ ४१

४ रसविमर्श, पृ० ३०५

५ रस विमर्श पृ० ३०५

फिर भी रमानुभूति के लिए मन्त्र काव्यगत आश्रय में ही तादात्म्य की स्थिति सदिग्ध रहती है। काव्याध्ययन के समय काव्यगत आश्रय और काव्यगत आश्रय दानों का स्वरूप महत्त्व व सामने निलाल स्पष्ट रहता है। सहृदय के लिए यह सम्भव ही नहीं है कि वह काव्यगत आश्रय से निर्लिप्त रहे और काव्यगत आश्रय में ही तादात्म्य प्राप्त करे। काव्य मन्त्र अनन्व स्थल हल है जहाँ आलवनमात्र का विनाश वणन मित्रता है ऐसी स्थिति में महत्त्व विना विभावाव्यगत आश्रय लवन के रमानुभूति प्राप्त करता है इस कारण काव्यगत आश्रय और काव्यगत आलवन दाना ही महत्त्व की रमानुभूति व कारण है, जो आलवन विभाव है।

सारांश

मन्त्र मन्त्रमूर्ति न विभाव की व्याख्या वाचिन जागिर और मायिक अभिनय तथा स्वार्थीभाषा का ताकार रूप प्रदान करने वाले कारण सामग्री व रूप में की है। भरतान्त्र युग में विभाव व साधमात्रवन, विषयात्रवन तथा उद्दीपन तान वग बताये गये।

विभाव व प्रस्तुत वग विभाजन तथा काव्यगत आश्रयात्रवन में महत्त्व व तादात्म्य की स्थिति स्वाकार वरन से अनन्व उल्लेख उपरिधत होती है। क्याकि काव्य मन्त्र आश्रय की स्थिति नहीं रहती, क्यात्र जात्रय का विनाश वणन मिलता है। जाचाय जगन्नाथ न एम स्थल मन्त्र पुरुष विषय के आश्रय की वल्पना कर लेने का मुज्ञान दिया है। परन्तु इसमें वास्तविक समस्या नहीं सुत्र भती। अतः हिंदी में आचाय रामचन्द्र गुप्त न काव्यगत आश्रय व अभाव में भी काव्यगत आश्रय मात्र व विनाश वणन में रमानुभूति स्वीकार कर ली है। फिर भी पूष रस की सिद्धि में इहान काव्यगत आश्रयालवन से तादात्म्य आवश्यक माना है। मराठी में डा० वाटव न काव्यगत आश्रयालवन और विषयालवन का तथा सहृदयगत आश्रयात्रवन और विषयालवन का पृथक्-पृथक् निरूपण आवश्यक ठहराया है। वस्तुतः विभाव का भरतनिरूपित मूल आशय-रसात्पादन कारण सामग्री रूप लिया जाय और काव्यगत आश्रयात्रवन या काव्यगत विषयात्रवन दोनों का सहृदय की रमानुभूति के लिए आलवन रूप ही मान लिया जाय ता रस निष्पत्ति और तादात्म्य की समस्या कुछ भीमा तर मुलज जाती है।

#### अनुभाव का स्वरूप

भरतमुनि ने अत्र रग-गुण में विभाव के परान् अनुभाव का उल्लेख कर रसात्पादन की पारम्परिक विधियाँ का स्वीकृति दी है। उन्होंने विभाव तथा अनुभाव का 'लारप्रतिष्ठ' तथा 'लापानानुगामा' कहा है अतः इनकी विन्त



व्याख्या भरतमुनि के मत में अनावश्यक है।<sup>१</sup> भरतमुनि ने विभिन्न रसा के पथक पृथक् अनुभावा का उल्लेख किया है, इस से अनुभावा का स्वरूप समझन में सहायता मिलती है। इनके अनुसार भृंगार रस के अनुभाव हैं—मधुरवचन, स्मितवदन, त्रुक्षप, कटाक्ष आदि।<sup>२</sup> इस प्रकार नट मनोभावा का व्यस्त करन के लिए जिन जिन अभिव्यजना की सहायता लेता है, व अनुभाव कहलाते हैं। भरतपरवर्ती आचार्यों ने अनुभाव का और अधिक स्पष्ट व्याख्याएँ की हैं। घनजय ने रत्यादि स्थायी भावा की सूचना करने वाले विकारा का अनुभाव कहा है।<sup>३</sup> ता आचार्य विश्वनाथ के मत में आलवन, उद्दीपन आदि कारणों से उत्पन्न भावा का बाह्य प्रकाशित करन वाले काय अनुभाव कहलाते हैं।<sup>४</sup> इसी प्रकार आचार्य जगन्नाथ के मत में भी स्थायीभावा के जो काय हैं वे ही अनुभाव हैं।<sup>५</sup> सारागत, सस्कृत आचार्यों के अन्तर्गत मनोगत भावों का यजित करने वाले सभी प्रकार के विकार अनुभाव कहलाते हैं।

हिन्दी में अनुभाव का स्वरूप प्रतिपादन सस्कृत-आचार्यों के मतानुसार ही हुआ है। आचार्य शुक्ल ने माना है कि भाव की गति विधि का पता अनुभावा से लगता है अतः अनुभाव भाव के सूचक होते हैं।<sup>६</sup> शुक्ल जी का प्रस्तुत मत घनजय के पूर्वोक्त अनुभाव-स्वरूप से मिलता जुलता है। डा० श्यामसुन्दरदास ने अनुभाव-लक्षण में भाव तत्त्व पर विचार बल दिया है। इनके मत में भाव कारण और अनुभाव काय हैं। अनुभावा के द्वारा भाव का सूचना मिलती है।<sup>७</sup> आचार्य जगन्नाथ के पूर्वोक्त अनुभाव-लक्षण में स्पष्ट है कि उन्होंने भी स्थायी भावा का काय ही अनुभाव का माना है। इन्हीं के अनुभाव लक्षण का आश्रय लेते हुए श्री रामचन्द्र मिश्र ने लिखा है कि भावा के काय हैं या जिनके द्वारा रति जानि स्थायी भावा का अनुभव होता है, उन्हें अनुभाव कहते हैं।<sup>८</sup> इस प्रकार हिन्दी के आचार्यों का व्युत्पत्तिशास्त्र ने अनुभाव-लक्षण में सस्कृत आचार्यों के मतों का ही आधार

१ नाट्यशास्त्र, ७१५

२ वटा, ७१८

३ दशरूपक ४१३

४ साहित्य दर्पण, ३१३३२ ।

५ रसगंगाधर, पृ० ३३ ।

६ रस मीमांसा, पृ० १७३ और २१० ।

७ साहित्यमालोचन, पृ० २२३ ।

८ काव्यरूपण पृ० ५८ ।

ग्रहण किया है। किन्तु अनुभावा के परंपरागत वर्गीकरण की वैधानिकता की परीक्षा में डा० दयामनुदरदाम तथा आचार्य गुकल ने परंपरा भिन्न चिंतन का प्रयत्न किया है।

### अनुभाव-वर्गीकरण

संस्कृत-साहित्यशास्त्र में अनुभाव के कायिक, मानसिक, आहाय और सात्विक चार वर्ग उपलब्ध होते हैं।<sup>१</sup> अनुभाव का स्वरूप सामान्यतः भावाभिव्यक्त शारीरिक विचारा के रूप में स्वीकार किया गया है, परिणामतः इनमें चार भेदों में से 'आहाय' और 'मानसिक' इन दो का अनुभावत्व सदिग्ध प्रतीत होना लगता है। इसीलिए डा० दयामनुदरदाम ने आहाय के अनुभावत्व का प्रतिपेक्ष किया है। इनके मत में वेप वदलकर भाव प्रदर्शित करने का आहाय कहते हैं। अतः इसकी गिनती अनुभावा में अन्तर्गत नहीं की जानी चाहिए। इसे अभिनय का एक अंग समझना चाहिए या या वह कि यह अभिनय का वीज रूप है, ना अनुचित नहीं।<sup>२</sup> यद्यन्तु यदि 'आहाय' अभिनय का एक अंग है तो 'मानसिक' अनुभाव भी 'भाव' का ही एक अंग है। क्योंकि दयामनुदरदाम जी के ही मत में मानसिक अनुभाव का लक्षण इस प्रकार है—'म्यायीभाव के कारण उत्पन्न हुए अथवा अथवा मनोविकार को मानसिक अनुभाव कहते हैं।<sup>३</sup> जब मानसिक अनुभाव का स्वरूप भावात्मक या मनाभावात्मक है तब इस गारारिक अवस्था प्रधान अनुभाव तत्व का एक पथक वगैरे विम आधार पर स्वीकार किया जाय? इसका मनाभावा या संचारिया में ही अन्तभाव ही सत्ता है। इस कारण आचार्य गुकल ने 'मानसिक' का भी अनुभाव का भेद नहीं माना है। इन्होंने अनुभाव के पूर्वोक्त चार वर्गों में से सात्विक और आहाय का कायिक में अंतर्भूत मान लिया है और मानसिक को मूलतः अनुभाव में मान कर इस मंचारा की गणा दी है। मानसिक का अनुभाव में मानने का कारण यह है कि अनुभाव किसी भाव का सूचक होता है, स्वयं मुख्य नहीं होता। 'मानसिक' को स्थिति द्वारा भिन्न है, मानसिक अवस्था स्वयं ग्राह्य नहीं होती। अतः गुकल जी के मत में 'मानसिक' अवस्था जा मुख्य हुआ करती है, वह सूचको में नहीं गयी गई, मंचारिया में गयी गई है।<sup>४</sup> इस प्रकार गुकल जी ने

१ साधुभावा कायिकमानसाहाय सात्विकभदारुधतुर्धा, रत्नतरंगिणी, पृ० १०

२ साहित्यालोचन, पृ० २२५।

३ वही, पृ० २२३।

४ रत्नतीर्थात्ता, पृ० २१९।

धयवान व्यक्ति तथा साधारण व्यक्ति क शाक प्रम तथा नय क अनुभाव एक जातीय हाते हैं फिर भी उनका स्वरूप एक जसा ही हो यह आवश्यक नही है।<sup>१</sup> दा० वाटव तथा प्रा० रा० श्री जाग दाना न ही अनुभावा क परंपरागत चार नदा की समीक्षा नहा की है। इहा न अनुभाव तथा सात्विक भाव का पयक-पयक विचन किया है।

इस प्रकार हिन्दा मराठी के अधिकांश नमीक्षका न नावानिव्यजक शारीरि क चष्टाया या विकारा का अनुभाव माना है। हिन्दी क आधुनिक काव्य-शास्त्रना न आहाय तथा मानसिक इन दो अनुभाव नदा का अनुभाव-वग म स्थान-देना अनुपयुक्त माना है क्याकि ये दाना नद अनुभाव के मूलभूत स्वरूप शारीरिक विकार या चष्टा का मीमा म नहा आते।

### सचारी भाव का स्वरूप

भरतमुनि स आचाय जगन्नाथ तक क आचार्या न व्यभिचारी भाव या सचारा भाव के स्वरूप का निरूपण किया है। भरतमुनि का दृष्टिकाण मूलत नाटकीय या रगमचीय रहा है। जत इहा ने इमी दृष्टिकाण स व्यभिचारी भावा का स्वरूप प्रतिपादन किया है। इनक मत न व्यभिचारी भाव सहवारी भाव हात हैं विविध रसा म अनुकूलता व साय सचरण करत हैं। वाचिक, आंगिक तथा सात्विक अभिनया स सम्बद्ध रसा का प्रयोग म लान हैं अर्थात् रामन पर व्यायहारिक या मूतरूप प्रदान करत हैं।<sup>२</sup> दग बाल तथा परिस्थिति का ध्यान म रर कर ही तता व्यभिचारी भावा का मध्यम अयम या उत्तम व्यक्तिया का महायता स प्रया म लाना चाहिए अथात् रगमच पर अभिनयात्मक रूप दना चाहिए।<sup>३</sup>

भरतात्तरयुग म भावा का नाति व्यभिचारी भावा का स्वरूप भी मनाभावा स्मर बनता गया। व्यभिचारा भावा का स्थायी भावा स सम्बद्ध किया जान लगा। पनाय व मत म व्यभिचारीभाव स्थायी भावा व अनुकूल अपना व्यापार करते हैं। मुद्र स जती तरा उत्पन्न हाता हैं और जती म विलीन हा जाती हैं उसी प्रकार स्थायी भावा स व्यभिचारी भावा की उत्पत्ति हाती है और व उसी म विलीन हो जात हैं।<sup>४</sup> व्यभिचारा भावा को ही बालान्तर न सचाराभाव कहा

१ अभिनय साध्य प्रकाश, पृ० १२०।

२ नाट्यशास्त्र, पृ० ८४ ७।२७

३ वही, पृ० १५, ७।११।

४ बंगरूपक, ४।७

अनभाव वग म 'कायिक' को अधिक महत्वपूर्ण माना है। अन्य वग या तो कायिक-  
ध्यापार म ही जन्तभूत हागे जयवा उनका क्षत्र अनुभाव की सीमा म नही जा सकया।  
श्री विश्वनाथ प्रमाद मिश्र ने जनभाव व मुख्य दो वग वनाय हैं—कायिक और  
वाचिक और प्रथम कायिक वग म ही सात्त्विक आगिक और जाहाय का अन्तर्भाव  
माना है।<sup>१</sup> मानमिक अनुभाव का भी दहाने कायिक म ही जन्तभूत मान लिया  
है। क्याकि प्रमाणिक मानमिक जनभाव मानने पर भी इनकी आगिक चेष्टाए  
जस्वाहृत नगी की जा सकता। इसलिए इह भी कायिक चेष्टाआ क ही जतभूत  
ममयना चाहिए।<sup>२</sup> श्री रामदहिन मिश्र न अनुभावा के मस्कृत परपरागत चार  
भग का निरूपण कर दिया है इनक औचित्य या अनौचित्य की परीक्षा नही की।<sup>३</sup>

अनुभाव स्वरूप के विवचन तथा अनुभावा के वर्गीकरण की विस्तृत मीमासा  
मराठी के काय शास्त्रज्ञा न नहा की है। प्राय अधिकाश ममीक्षको ने मस्कृत  
आचार्यों के प्रतिपादन का हा समयन किया है। डा० वाटव के अनुसार अनुभाव का  
स्वरूप इस प्रकार है— नट भावाभिव्यक्ति के लिए प्रस्तुत होता है। वह अभिनय  
के द्वारा अर्थात् भ्रू वचना हास्य रदन नेत्र विस्फारण आदि स मूलपात्र की  
भावनाआ का यक्त करता है और प्रक्षवा का उस भावना का अनुभव अपन इन  
भावाभिव्यजना से करा ता है फलत इन अभिनय रूप भावनाभिव्यजना (शारी  
रिक चेष्टाआ तथा मख भगिमा आदि ) का अनुभाव कहा जाता है।<sup>४</sup> अनुभाव  
का प्रस्तुत स्वरूप विवचन भरतमुनि क अनुभाव लक्षण पर आधत है।<sup>५</sup> डा०  
वाटव न धनजय मट्ट लोल्लट जगन्नाथ तथा हमचन्द्र द्वारा प्रतिपादित अनुभाव  
स्वरुपा का निरूपण किया है किन्तु अनुभाव के भेदो की परीक्षा नही की।<sup>६</sup>  
प्रा० रा० श्री० जोग ने भी मनोभावा व अभिव्यजक सभी प्रकार क शारीरिक  
विकारा अथवा शरीरावयवा की चेष्टाआ को अनुभाव माना है।<sup>७</sup> इनके मत म  
विभिन्न रसा के अनुरूप भिन्न भिन्न अनुभाव तो होते हैं किन्तु व्यक्ति स्वभाव,  
दग तथा काल क कारण भी अनुभावा म भिन्नता आना सभव है। उदाहरणार्थ,

१ बाइमय विमश, प० १४६।

२ वही, प० १४५।

३ काव्यवपण, प० ५८।

४ रसविमश, प० १०३।

५ नाट्यशास्त्र, ७ ७, तथा ७-१३।

६ रसविमश, प० १०३ १०४।

७ अभिनव काव्य प्रकाश, प० १२०।

द्वेषवान् व्यक्ति तथा साधारण व्यक्ति के शोक, प्रेम तथा भय के अनुभाव एक जातीय होते हैं फिर भी उनका स्वरूप एक जसा ही हो यह आवश्यक नहीं है ।<sup>१</sup> डा० वाटव तथा प्रा० रा० श्री जोग दाना न ही अनुभावा के परंपरागत चार भेदों की समीक्षा नहीं की है । इन्होंने अनुभाव तथा नाट्यिक भाव का पद्यक-व्यक्त विवेचन किया है ।

इस प्रकार हिन्दी मराठी के अधिकांश समीक्षकों ने नावाभिव्यक्त शारीरिक चपटाया या विकारा का अनुभाव माना है । हिन्दी के आधुनिक काव्य-शास्त्रज्ञों ने आहार्य तथा मानसिक इन दो अनुभाव भेदों का अनुभाव वर्ग में स्थान देना अनुपयुक्त माना है क्योंकि ये दोनों नद अनुभाव के मूलभूत स्वरूप शारीरिक विकार या चपटा की सीमा में नहीं जाते ।

### सञ्चारी भाव का स्वरूप

भरतमुनि से आचार्य जगन्नाथ तक के आचार्यों ने व्यभिचारी भाव या सञ्चारी भाव के स्वरूप का निरूपण किया है । भरतमुनि का दृष्टिकोण मन्त्र नाटकीय या रगमचाय रहा है । अतः इन्होंने इसी दृष्टिकोण से व्यभिचारी भाव का स्वरूप प्रतिपादन किया है । इनके मत में व्यभिचारी भाव सञ्चारी भाव होते हैं विविध रसा में अनुकूलता के साथ सञ्चरण करते हैं । वाचिक आंगिक तथा साञ्चिक अभिनय से सम्बद्ध रसा का प्रयोग करने हैं अर्थात् रामय पर व्यावहारिक या मूलरूप प्रदान करते हैं ।<sup>२</sup> दश वाक्य तथा परिस्थिति का ध्यान में रख कर हातनाम व्यभिचारी भावों का मन्त्र, अधम या उत्तम व्यक्तियों की सहायता से प्रयोग में लाना चाहिए अर्थात् रगमच पर अभिनयात्मक रूप देना चाहिए ।<sup>३</sup>

भरताक्षरपुत्र में भावों की भाँति व्यभिचारी भावों का स्वरूप भी मनाभावों के रूप में देना गया । व्यभिचारी भावों का स्थायी भावों से सम्बद्ध किया जाना लगा । धनञ्जय के मत में व्यभिचाराभाव स्थायी भावों के अनुकूल अपना व्यापार करते हैं । समुद्र से जसी तरंग उत्पन्न होता है और उसी में विलीन हो जाती है, उसी प्रकार स्थायी भावों से व्यभिचारी भावों की उत्पत्ति होती है और वे उसी में विलीन हो जाते हैं ।<sup>४</sup> व्यभिचारी भावों की कालान्तर में सञ्चारीभाव कहा

१ अभिनव काव्य प्रकाश, पृ० १२० ।

२ नाट्यशास्त्र, पृ० ८४ ७१२७

३ यही, पृ० १५, ७१११ ।

४ दशरूपक, ४१७

अनुभाव वग म कायिक' को अधिक महत्वपूर्ण माना है। अन्य वग या तो कायिक-व्यापार म ही अंतभूत होंगे अथवा उनका क्षेत्र अनुभाव की सीमा म नहा जा सकेगा। श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अनुभाव के मुख्य दो वग बनाये हैं—कायिक और वाचिक और प्रथम कायिक वग म ही सात्विक, जागिक और आहाय का अंतर्भाव माना है।<sup>१</sup> मानसिक अनुभाव को भी इहान कायिक म ही अंतभूत मान लिया है। क्योंकि प्रमोदादि मानसिक अनुभाव मानने पर भी इनकी जागिक चेंप्टाएँ अम्बीकृत नहीं की जा सकती। इसलिए इह भी कायिक चेंप्टाओं के ही अंतभूत समझना चाहिए।<sup>२</sup> श्री रामदहिन मित्र ने अनुभावा के सस्त्रुत-परपरागत चार भेदा का निरूपण कर दिया है इनके जीचित्य या अनौचित्य की परीक्षा नहीं की।<sup>३</sup>

अनुभाव-स्वरूप के विवचन तथा अनुभावा के वर्गीकरण की विस्तृत मीमासा मराठी क काय शास्त्रणो न नहा की है। प्राय अविशाल समीक्षका न सस्त्रुत आचार्यों के प्रतिपादन का ही समझन किया है। डा० वाटवे क अनुसार अनुभाव का स्वरूप इस प्रकार है— नट भावाभिव्यक्ति के लिए प्रस्तुत होता है। वह अभिनय के द्वारा अर्थात् श्रु वनता हास्य रुदन, नत्र विस्फारण जादि से मूलपात्र की भावनाओं का यस्त करता है और प्रेक्षकों को उस भावना का अनुभव अपन इन भावाभिव्यजना मे करा देता है फलत इन अभिनय रूप भावनाभिव्यजना (शारीरिक चेंप्टाओं तथा मुग भगिमा जादि ) को अनुभाव कहा जाता है।<sup>४</sup> अनुभाव का प्रस्तुत स्वरूप विवचन भरतमुनि क अनुभाव लक्षण पर आधत है।<sup>५</sup> डा० वाटवे न धनजय भट्ट लोल्लट, जगन्नाथ तथा हेमचन्द्र द्वारा प्रतिपादित अनुभाव स्वरुपा का निरूपण किया है किन्तु अनुभाव के भेदो की परीक्षा नहीं की।<sup>६</sup> प्रा० रा० श्री० जोग ने भी मनोभावा व अभिव्यजक सभी प्रकार के गारारिक विकारा अथवा शरीरावयवा की चेंप्टाओं का अनुभाव माना है।<sup>७</sup> इनके मत म विभिन्न रसो क अनुस्वप भिन्न भिन्न अनुभाव तो हाते है किन्तु यक्ति-स्वभाव, दग तथा काल व कारण भी अनुभावा म भिन्नता आना संभव है। उदाहरणार्थ,

१ वाङ्मय विमल, प० १४६।

२ वही, प० १४५।

३ काव्यरूपण, प० ५८।

४ रसविमल, प० १०३।

५ नाट्यशास्त्र, ७-७, तथा ७ १३।

६ रसविमल, पृ० १०३ १०४।

७ अभिनव काव्य प्रकाश, पृ० १२०।

अनुभाव वग म कायिक' को अधिक महत्वपूर्ण माना है। अथ वग या तो कायिक-  
ध्यापार म ही अतर्भूत होंगे अथवा उनका क्षेत्र अनुभाव की सामा मे नही आ सकेगा ।  
श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र न अनुभाव के मुख्य दो वग बनाये हैं—कायिक और  
वाचिक और प्रथम कायिक वग म ही सात्विक, आगिक और आहाय का अतभाव  
माना है ।<sup>१</sup> मानसिक अनुभाव को भी इहाने कायिक म ही अतर्भूत मान लिया  
है । क्योंकि प्रमोदादि मानसिक अनुभाव मानने पर भी इनकी आगिक चष्टाए  
अम्बाकृत नहा की जा सकती । इसलिए इहे भी कायिक चेष्टाओ के ही अतर्भूत  
समझना चाहिए ।<sup>२</sup> श्री रामदहिन मिश्र ने अनुभावो के सस्कृत परंपरागत चार  
भेदा का निरूपण कर दिया है इनके औचित्य या अनौचित्य की परीक्षा नहा की ।<sup>३</sup>

अनुभाव-स्वरूप के विवेचन तथा अनुभावा के वर्गीकरण की विस्तृत मीमासा  
मराठी के काय शास्त्रज्ञा न नहा की है । प्राय अधिकांश समीक्षका ने सस्कृत  
आचार्यों के प्रतिपादन का ही समथन किया है । डा० वाटवे के अनुसार अनुभाव का  
स्वरूप इस प्रकार है— नट भावाभियक्ति के लिए प्रस्तुत होता है । वह अभिनय  
के द्वारा अर्थात् भ्रू वनता, हास्य रदन, नेत्र विस्फारण आदि से मूलपात्र की  
भावनाओ को यक्त करता है और प्रेक्षका को उस भावना का अनुभव अपने इन  
भावाभियजना से करा देता है फलत इन अभिाय रूप भावनाभियजना (शारी  
रिक चेष्टाओ तथा मुख भंगिमा आदि ) को अनुभाव कहा जाता है ।<sup>४</sup> अनुभाव  
का प्रस्तुत स्वरूप विवेचन भरतमुनि के अनुभाव-लक्षण पर आधत है ।<sup>५</sup> डा०  
घाटवे ने धनजय, भट्ट लोल्लट जगन्नाथ तथा हेमचंद्र द्वारा प्रतिपादित अनुभाव  
स्वरुपा का निरूपण किया है किन्तु अनुभाव के भेदो की परीक्षा नही की ।<sup>६</sup>  
प्रा० रा० श्री० जोग ने भी मनोभावो के अभिव्यजक सभी प्रकार के शारीरिक  
विकारो अथवा शरीरावयवा की चेष्टाओ को अनुभाव माना है ।<sup>७</sup> इनके मत मे  
विभिन्न रसा के अनुरूप भिन्न भिन्न अनुभाव तो होते हैं किन्तु 'यक्ति-स्वभाव,  
देग तथा काल' के कारण भी अनुभावा म भिन्नता आना सभव है । उदाहरणार्थ,

१ वाङ्मय विमश, प० १४६ ।

२ वही, प० १४५ ।

३ कायदपण, प० ५८ ।

४ रसविमश, प० १०३ ।

५ नाट्यशास्त्र, ७ ७, तथा ७ १३ ।

६ रसविमश, प० १०३ १०४ ।

७ अभिनव काव्य प्रकाश, प० १२० ।

धरवान व्यक्ति तथा साधारण व्यक्ति व 'भाव', प्रेम तथा भय के अनुभाव एक जानीय हान हैं, फिर भी उनका स्वरूप एक जमा ही हो यह आवश्यक नहीं है।<sup>१</sup> डा० वाटव तथा प्रा० रा० श्री जाग दाना ने ही अनुभावों के परंपरागत चार भेदों की समीक्षा नहीं की है। इन्होंने अनुभाव तथा सात्त्विक भाव का पृथक्-पृथक् विवेचन किया है।

इस प्रकार हिंदी मंगठी के अधिकांश समीक्षकों ने भावाभिव्यजक गारी-गिरी चेष्टाओं या विकारा का अनुभाव माना है। हिंदी के आधुनिक काव्य शास्त्रज्ञों ने आश्रय तथा मानसिक इन दो अनुभाव भेदों को अनुभाव वर्ग में स्थान देना अनुपयुक्त माना है क्योंकि ये दाना भेद अनुभाव के मूलभूत स्वरूप शारीरिक विचार या चेष्टा का भीमा में नहीं जाते।

### संचारी भाव का स्वरूप

भरतमुनि से आचार्य जगन्नाथ तब के आचार्यों ने व्यभिचारी भाव या संचारी भाव के स्वरूप का निरूपण किया है। भरतमुनि का दृष्टिकोण मूलतः नाटकीय या रंगमंचीय रहा है। अतः इन्होंने दृष्टिकोण से व्यभिचारी भावों का स्वरूप प्रतिपादन किया है। इनके मत में व्यभिचारी भाव संचारी भाव हान हैं विविध रसों में अनुकूलता के साथ संचरण करते हैं। वाचिक, आंगिक तथा सात्त्विक अभिनयों से सम्बद्ध रसों का प्रयोग में लाने हैं अर्थात् रंगमंच पर व्यावहारिक या मनोरूप प्रदान करते हैं।<sup>२</sup> दश वाच तथा परिगम्यति का ध्यान में रखकर ही तत्काल व्यभिचारी भावों का मध्यम अधम या उत्तम व्यक्तियों की महत्ता से प्रयोग में लाना चाहिए अर्थात् रंगमंच पर अभिनयगत रूप देना चाहिए।<sup>३</sup>

भारतवर्ष में भावों की भाँति व्यभिचारी भावों का स्वरूप भी मनाभावात्मक बनना गया। व्यभिचारी भावों का स्थायी भावों से सम्बद्ध किया जाने लगा। धनञ्जय के मत में व्यभिचारी भावों स्थायी भावों के अनुरूप अपना व्यापार करते हैं। समुद्र से जमीन तरंग उत्पन्न होता है और जमीन में विगीत हो जाती है, उसी प्रकार स्थायी भावों से व्यभिचारी भावों की उत्पत्ति होती है और वे जमीन में विगीत हो जाती हैं।<sup>४</sup> व्यभिचारी भावों की बालाभर में संचारी भावों का

१ अभिनव काव्य प्रकाश, पृ० १२०।

२ नाट्यशास्त्र, पृ० ८४ ७१२७

३ वही, पृ० ९५, ७१९१।

४ रंगरत्नक, ४१७



जाने लगा । भानुदत्त के मत में ये सचारीभाव इसलिए कहलाने हैं कि एक ही रस पर अवलंबित न हो कर इतर रसों में भी मचरण करते हैं ।<sup>१</sup> परवर्ती वृत्तिपय आचार्यों के मत में रति आदि स्थायीभाव विविध या विपुल विभावा से निर्मित होते हैं, परन्तु स्वल्प विभावों से निर्मित वे ही स्थायी भाव व्यभिचारी भाव बन जाते हैं ।<sup>२</sup>

इस प्रकार भरतात्तर युग में सचारी भावा को मनोभाव-स्वरूप प्रतिपादित किया जाने लगा । भरतमुनि परिगणित तत्तीस सचारियों में निहित अनेक शारीरिक अवस्थाओं को भी मनोभावरूप ही सिद्ध किया गया । उदाहरणार्थ आचार्य जगन्नाथ ने 'भरण सचारी को शारीरिक अवस्था रूप नहीं माना है वरन इसे धित्तवृत्तिरूप ही सिद्ध किया है ।<sup>३</sup>

भरतमुनि प्रयुक्त भाव शब्द का अर्थ एकांतत मनोभाव नहीं है । उन्होंने सामान्यत रस परिपायक सभी तत्वा को भाव' रूप में ग्रहण किया है ।<sup>४</sup> कालात्तर में संस्कृत साहित्यशास्त्र में भाव शब्द का अर्थ मनोभाव के लिए रूढ होता गया, परिणामत सभी सचारी भावों का मनोभाव स्वरूप सिद्ध किया गया । तत्तीस सचारी भावा में सभी मनोभाव-स्वरूप नहीं है । उदाहरणार्थ, मद, श्रम, आलस्य, जडता निद्रा, अपस्मार, सुप्त, याधि उन्माद, मरण आदि शारीरिक अवस्थाएँ हैं और मति, वितक, अवहित्य स्मृति आदि बौद्धिक या ज्ञानात्मक अवस्थाएँ हैं । ऐसी स्थिति में सभी सचारी भावों को मनोभावार्थक सिद्ध करना कहा तक सगत है ? यदि सभी सचारीभाव मनोभावार्थक नहीं हैं तब इनका वास्तविक स्वरूप क्या है ? इन प्रश्नों का समाधान आधुनिक हिन्दी-मराठी के समीक्षकों ने विस्तार से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है ।

संस्कृत-आचार्यों की परंपरानुसार आचार्य रामचंद्र शुक्ल न स्थायीभावों तथा सचारियों की व्यावतक बसोटी रस मानी है । इनके मत में किसी भाव की व्यंजना से श्रोता या दशक में भी उसी भाव की प्रतीति हो तो वही स्थायी भाव समझना चाहिए और दोष भाव तथा मनोवेगों को सचारी, क्योंकि स्थायी भाव ही रसावस्था का प्राप्त होते हैं ।<sup>५</sup> शुक्ल जी के मत में भावा का स्वरूप

१ रसतरंगिणी प० ५ ।

२ रसगंगाधर (जगन्नाथ) प० ३८ ३९ ।

३ रसगंगाधर, प० १०९ ।

४ दे० भाव-स्वरूप प्रकरण ।

५ रसमीमांसा, पृ० २०३ ।

के भीतर ही वह वस्तु है जिसके अनुसार प्रधान (स्यायी) और सचारी का विभाग हो जाना है, वह वस्तु है आलम्बन ।<sup>१</sup> आलम्बन के भी दो भेद होते हैं— एक विशेष और दूसरा सामान्य । जो सामान्य आलम्बन होता है उसके प्रति मनुष्य मात्र का कम से कम सहृदयमात्र का वही भाव होगा, जो आश्रय का है ।<sup>२</sup> सामान्य आलम्बन से सम्बद्ध भाव स्यायी भाव हात हैं और सचारीभाव इसी स्यायीभाव के परिपायक होते हैं । एव भाव दूसरे भाव का सचारी होकर सभी आ सक्तता है जब उसका विषय वही हो जो प्रधान भाव का आलम्बन है और उसकी अपनी कोई गति या प्रवृत्ति न हो । साथ ही वह भाव स्वयं ऐसा हो कि प्रधान भाव के साथ उसका कोई स्पातर लगा रहता हो और उसकी गति या प्रवृत्ति वही हो जो प्रधान भाव की होती है ।<sup>३</sup> इसमें स्पष्ट है कि शुक्ल जी स्यायी और सचारी भावा में अगाङ्गिभाव सम्बन्ध मानत हैं । इन्होंने परंपरागत नतीम सचारीभावा को इसी बनीटी पर कम कर स्यायी भाव का अंग बनने में समथ सचारीभावा को ही सचारी वर्ग में स्थान दिया है और अथ सचारिया व सचारित्व का प्रतिषेध किया है । उदाहरणाय आलस्य को इन्होंने सचारी भाव नहा माना है, क्योंकि इसका विमा भाव के साथ 'प्रत्यक्ष सम्बन्ध' नहीं है या 'सीधा लगाव' नहीं है ।<sup>४</sup> सामान्यतः शुक्ल जी ने प्रधान भाव या स्यायी भाव का केंद्र बिन्दु मान कर इसके विद्युत्तम पट्टचने में सहायक अनेक शारीरिक और मानसिक अवस्थाओं तथा अंतःकरण की वृत्तियों को भी सचारीभाव में अंतर्भूत कर लिया है ।

शुक्ल जी के समान प० विन्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भी सचारिया को व्यापक रूप में ही ग्रहण किया है । इन्होंने परंपरागत सभी सचारिया का मनाविचार स्वरूप नहीं माना है । इनके मत में इनमें कुछ तो बुद्धि की वृत्तियाँ हैं और कुछ शरीर के घम हैं । मति वित्त आदि बुद्धि की वृत्तियाँ हैं और मरण आलस्य, निद्रा, अपस्मार व्याधि आदि शरीर के घम हैं । एमी स्थिति में यह मानना पड़ेगा कि सचारा शब्द में शान्त्ववारा का तात्पर्य स्यायी भाव में गहायन होने वाली

१ रसमीमाता पृ० २०४ ।

२ वही, प० २०५ ।

३ वही, प० ३३७ ।

४ वही, पृ० ३२४ २५ ।

वृत्तियों या स्थितियों से है।<sup>१</sup> अतः इनके विचार में संचारीगत मानसिक बौद्धिक एवं शारीरिक अवस्थाओं को 'भाव' कहना उपलक्षण मात्र है।<sup>२</sup> संचारीभाव स्थायीभाव में सहायक होने वाली वृत्तियाँ या स्थितियाँ हैं, सभी मनोभाव स्वरूप नहीं हैं। संचारी विषयक प्रस्तुत दृष्टिकोण का प० रामदहिन मिश्र ने प्रत्याख्यान किया है। इनके मत में सभी संचारीभावों का स्वरूप मनाभावात्मक या चित्तवृत्ति रूप ही है। अतः इनके भावात्मक स्वरूप को उपलक्षणमात्र कहना अनुपयुक्त है।<sup>३</sup> क्योंकि इनके मत में मचरण शील अस्थिर मनोविज्ञान या चित्तवृत्तियों को संचारी भाव कहते हैं।<sup>४</sup> इसी दृष्टिकोण से श्री रामदहिन मिश्र ने परंपरागत शारीरिक अवस्थाएँ अनेक संचारियों का मनोभाव रूप या चित्तवृत्ति रूप ही सिद्ध किया है। मरण श्रम, निद्रा आदि शारीरिक अवस्थाएँ संचारियाँ के मूल में भी रहने मनोभाव की ही स्थिति स्वीकार की है।<sup>५</sup> श्री रामदहिन मिश्र ने भरत के 'यापक' भाव स्वरूप को दृष्टिगत नहीं रखा है परिणामतः अभिनव गुप्त आदि आचार्यों के अनुसार भाव का चित्तवृत्तिरूप<sup>६</sup> जय ग्रहण करके संचारियों को भी मनाभावात्मक ही मान लिया है। डा० नगेंद्र ने भाव को मूलतः मनोभाव रूप ही माना है अतः इन्होंने संचारियों का भाव मनाविचार का पर्याय सिद्ध किया है।<sup>७</sup> इनके मत में परंपरागत तृतीय संचारियों में से उन संचारियों को निकालना आवश्यक है जो मुख्यतः शरीर के धर्म हैं।<sup>८</sup>

इस प्रकार हिंदी के आधुनिक समीक्षकों में संचारीभावों के स्वरूप के विषय में दो भिन्न भिन्न मत दृष्टिकोचर होत हैं। एक मतानुसार संचारी भाव का स्वरूप एकांततः मनाभावात्मक नहीं है वरन् संचारी से तात्पर्य रस या स्थायी भाव की परिपोषक वृत्तियों या स्थितियों से है। इसमें शारीरिक बौद्धिक और मानसिक सभी अवस्थाओं का समावेश हो जाता है। दूसरे मतानुसार संचारी

१ वाङ्मयविमर्श, पृ० १४८ ।

२ वही, पृ० १४८ ।

३ काव्यदर्पण, पृ० ८० ।

४ वही, पृ० ६७ ।

५ वही, पृ० ८३ ।

६ दे० भाव स्वरूप प्रकरण ।

७ रीतिकव्य की भूमिका, पृ० ८१ ।

८ वही, पृ० ८२ ।